रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१६

वर्ष ५४
अंक ८

वार्षिक १००/– **एक प्रति १२/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ४६०/–
१० वर्षों के लिए – रु. ९००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस. अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ३० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षों के लिए १२५ यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १४०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

मुद्रक : संयोग ऑफसेट प्रा. लि., बजरंगनगर, रायपुर (फोन : ८१०९१ २७४०२)

अगस्त माह के जयन्ती और त्योहार

१० गोस्वामी तुलसीदास
१५ स्वतन्त्रता दिवस
१८ स्वामी निरंजनानन्द, रक्षाबन्धन
२५ श्रीकृष्ण जन्माष्टमी
३१ स्वामी अद्वैतानन्द

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

आवरण पृष्ठ पर दिए गए रामकृष्ण मिशन, रायपुर के मन्दिर की स्थापना २ फरवरी, १९७६ में रामकृष्ण मठ-मिशन के दशम संघाध्यक्ष श्रद्धेय स्वामी वीरेश्वरानन्दजी महाराज के करकमलों द्वारा हुई।

रायपुर में आश्रम की प्रारम्भिक स्थापना यहाँ के स्थानीय भक्तों द्वारा 'श्रीरामकृष्ण सेवा समिति' के नाम से १९५८ में हुई। विश्ववन्द्य स्वामी विवेकानन्द के कैशोर्य के दो वर्ष (१८७७-७९) रायपुर में ही बीते थे। उन्हीं की पावन स्मृति को सुरक्षित रखने के लिए 'विवेकानन्द जन्म शताब्दी' के अवसर पर आश्रम के निर्माण की योजना बनाई गई। अप्रैल, १९६२ में आश्रम अपनी भूमि पर स्थानान्तरित हुआ। ७ अप्रैल, १९६८ को रामनवमी के पावन अवसर पर इसका विलय रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ में हुआ और यह रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के नाम में परिवर्तित हुआ। ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्द जी महाराज इस आश्रम के संस्थापक सचिव थे।

आश्रम द्वारा एक धर्मार्थ चिकित्सालय संचालित किया जाता है, जिसके अन्तर्गत एक्स-रे, फिजियोथेरेपी, नेत्र, दन्त-चिकित्सा एवं अन्य रोग-चिकित्सा के विभाग हैं। आश्रम चिकित्सालय द्वारा होमियोपैथी चिकित्सा की भी सुविधा उपलब्ध है। शैक्षिक सेवाओं के अन्तर्गत आश्रम के विवेकानन्द विद्यार्थी भवन में अल्प-संसाधन स्नातक-शिक्षा के विद्यार्थियों के लिए नि:शुल्क आवास एवं भोजन की व्यवस्था की जाती है। इसके अलावा विवेकानन्द बालक संघ और कोचिंग सेन्टर का भी संचालन किया जाता है। विद्यार्थियों एवं साधारण जनता के लिए विवेकानन्द पुस्तकालय की सेवा भी उपलब्ध है।

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान-दाता	दान-राशि
पुरुषोत्तम दास गुप्ता, बिरहाना रोड, कानपुर	२१,०००/-

विवेक-ज्योति पुस्तकालय योजना

क्रमांक	सहयोग-कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
१	श्रीमती लीला गांगुली, रायपुर (छ.ग.)	माँ बहादुर कलारिन कला एवं विज्ञान महाविद्यालय, गुरुर (बालोद), छ.ग.
२	श्री सौरव मोहटा, हैदराबाद (आं.प्र.)	प्राचार्य, गवर्मेंट पी.जी. कॉलेज, धमतरी (छ.ग.)
३	सुश्री आभा कोठारी, नई दिल्ली	प्राचार्य, गवर्मेंट बद्री कॉलेज, आरंग, (रायपुर, छ.ग.)
४	श्री प्रदीप भार्गव, लखनऊ (उ.प्र.)	संत तुकाराम, पी.जी.कॉलेज, उतई (दुर्ग, छ.ग.)
५	श्री प्रवीरचन्द्र तिवारी, भिलाई (छ.ग.)	शासकीय आदर्श हरिहर उच्च मा. विद्यालय, नवापारा राजिम (रायपुर, छ.ग.)
६	श्री पुरुषोत्तम शर्मा, जयपुर (राज.)	सेन्ट्रल लाइब्रेरी, रायपुर (छ.ग.)
७	श्री नरोत्तमलाल साहू, जांजगीर, चापा	विवेक-ज्योति कॉलेज, मेचोग्राम, खड़गपुर रोड, कोलकाता (प.बं)
८	श्री नरोत्तमलाल साहू, जांजगीर, चापा	पंडित रविशंकर विश्वविद्यालय, रायपुर

वर्ष ५४ **अगस्त २०१६** **अंक ८**

नन्दकुमाराष्टकम्

सुन्दरगोपालमुरवनमालं
नयनविशालं दुःखहरम्।
वृन्दावनचन्द्रमानन्दकन्दं
परमानन्दं धरणिधरम्।।
वल्लभघनश्यामं पूर्णकाम-
मत्यभिरामं प्रीतिकरम्।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं
तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्।।
शोभित मुखधूलं यमुनाकूलं
निपटअतूलं सुखदतरम्।
मुखमण्डितरेणुं चारितधेनुं
वादितवेणुं मधुरसुरम्।।
वल्लभमति विमलं शुभपदकमलं
नखरुचिअमलं तिमिरहरम्।
भज नन्दकुमारं सर्वसुखसारं
तत्त्वविचारं ब्रह्मपरम्।।
(श्रीवल्लभाचार्य प्रणीत)

पुरखों की थाती

यश्च मूढमतो लोके, यश्च बुद्धेः परं गतः।
तौ उभौ सुखमेधेते, क्लिश्यन्तिरितरे जनाः।।

– इस संसार में केवल दो प्रकार के मनुष्य सुखी रहते हैं; एक तो वह जो पूरी तौर से मूढ़ तथा अज्ञानी है और दूसरा वह बुद्धि के भी पार जा चुका है अर्थात् तुरीयावस्था की प्राप्ति कर चुका है । बीच के सभी लोग कष्टों का अनुभव करते रहते हैं । (भागवत, ३/७/१७)

यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते
निघर्षण-च्छेदन-ताप-ताडनैः ।
तथा चतुर्भिः पुरुषः परीक्ष्यते
श्रुतेन शीलेन गुणेन कर्मणा ।।५१५।।

– जैसे सोने की परीक्षा चार प्रकार से की जाती है – उसे (कसौटी पर) घिसा जाता है, काटा जाता है, गर्म किया जाता है और पीटा जाता है; वैसे ही व्यक्ति के चरित्र की परीक्षा भी चार तरह से की जाती है – उसका ज्ञान, उसका आचरण, उसके गुण तथा उसके कर्म देखे जाते हैं ।

यं शैवाः समुपासते शिव इति ब्रह्मेति वेदान्तिनो ।
बौद्धा बुद्ध इति प्रमाणपटवः कर्तेति नैयायिकाः ।।
अर्हन्नित्यथ जैनशासनरताः कर्मेति मीमांसकाः
सोऽयं नो विदधातु वांछितफलं त्रैलोक्यनाथो हरिः।।

– जिसका शैव लोग 'शिव' के रूप में उपासना करते हैं, जो वेदान्तियों का ब्रह्म है, जो बौद्ध मतावलम्बियों का बुद्ध है, जिसे नैयायिक लोग 'कर्ता' कहते हैं, जिसे जैन लोग अर्हत् नाम से जानते हैं, जो मीमांसकों का कर्म है, वे ही तीनों लोकों के स्वामी श्रीहरि हमारी इच्छित वस्तु हमें प्रदान करें।
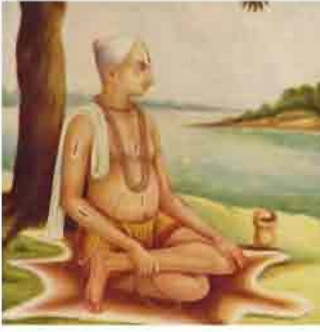
विविध भजन

रामपद पदुम पराग परी

गोस्वामी तुलसीदास

रामपद पदुम पराग परी।
ऋषि तिय तुरत त्यागि पाहन-तनु छबिमय देह धरी।।
प्रबल पाप पति-साप दुसह दव दारुन जरनि जरी।
कृपासिन्धु सिंचि बिबुध बेलि ज्यों फिरि सुख-फरनि फरी।।
निगम अगम मूरति महेश मति जुबति बराय बरी।
सोई मूरति भइ जानि नयन-पथ इक टक तें न टरी।।
बरनति हृदय सरूप सील गुन प्रेम प्रमोद भरी।
तुलसीदास अस केहि आरत की आरति प्रभु न हरी।

जीवन का क्या ठिकाना?

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

जीवन का क्या ठिकाना मन राम राम भज ले।
कब त्याग तन की डाली, उड़ जाए प्राण पंछी।
पिंजड़ा पड़ा पुराना मन राम राम भज ले।।
जीवन का क्या ठिकाना ....
जर्जर हुआ है यह तन, हो जाए बन्द किस छन।
स्वाँसो का आना-जाना, मन राम राम भज ले।।
जीवन का क्या ठिकाना ...
कल आज करते-करते दिन–रात बहुत बीते।
अब छोड़कर बहाना, मन राम राम भज ले।।
जीवन का क्या ठिकाना ...
भोगों के बीच पड़कर भगवान को भी भूला।
ऐसा हुआ दिवाना, मन राम राम भज ले।।
जीवन का क्या ठिकाना ...
राजेश खुद को जानो, सब रूप प्रभु को मानो।
क्या अपना क्या विराना, मन राम राम भज ले।।

कृष्ण कृष्ण गाओ

स्वामी प्रपत्त्यानन्द

कृष्ण कृष्ण गाओ भक्तों कृष्ण कृष्ण गाओ।
कृष्ण गा-गाकर कृष्ण को रिझाओ।।
कृष्ण का ही नाम जपो, कृष्ण को ही ध्याओ।
कृष्ण-कृष्ण कहत-कहत हृदय से हरषाओ।।
कृष्ण नाम स्वयं सुनो अन्य को सुनाओ।
कृष्ण-कृष्ण रटत-रटत परम सुख पाओ।।
कृष्ण नाम अमृत पिओ, विषय मद भुलाओ।
कृष्ण सुरस सुधा पीकर आनन्द धाम जाओ।।
कृष्ण आदि कृष्ण मध्य कृष्ण अन्त पाओ।
कृष्ण निखिल विश्वरूप कृष्ण में समाओ।।

सुन्दर लाला नन्ददुलाला

विश्वरूप

सुन्दर लाला नन्ददुलाला नाचत श्री वृन्दावन में।
भाले चन्दन तिलक मनोहर अलका शोभे कपोलन में।।
सिर पर चूड़ा नयन विशाला कुंदमाल हिल पर डोले।
पहिरन पीत पटांबर बोले रुनुझुनु नुपूर चरनन में।।
कोई गावत पंचम तान, बंसी पुकारे राधा नाम।
मंगल ताल मृदंग रसाल बजावत कोई रंगन में।।
राधा कृष्ण एकतनु होए निधुवन में रंग मचाई।
'विश्वरूप' जो भगवान सोई लीला करत वृन्दावन में।।

जय बृजराज कन्हैया लाल

गोस्वामी श्री 'बिन्दुजी' महाराज

जय बृजराज कन्हैया लाल !
जिनकी मधुर मोहिनी शोभा लखि दृग होत निहाल।
जो बृज वासिन के प्रिय वल्लभ सखा सनेही ग्वाल।
बृज गोपिन के श्याम सलोने प्राणनाथ गोपाल।।
जिनके मुख मुरलिया मनोहर गावत गीत रसाल।
जिनकी अगम अपर अनोखी लीला ललित विशाल।।
मोर मुकुट पीताम्बर कटि-तट चलत त्रिभंगी चाल।
राजत रोली तिलक 'बिन्दु' श्री यदुकुल भूषण भाल।।

सच्ची स्वतन्त्रता कब मिलेगी?

भारतीय संविधान में अधिकारों की घोषणा में कहा गया है – ''सभी मनुष्य जन्म से ही गरिमा और अधिकारों की दृष्टि से स्वतन्त्र और समान हैं। उन्हें बुद्धि और अन्तश्चेतना प्रदान की गई है। उन्हें परस्पर भ्रातृत्व की भावना से कार्य करना चाहिए।'' वैसे ही संविधान में मानव के लिये विभिन्न प्रकार की स्वतन्त्रता का उल्लेख है। जैसे – अभिमत और अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता, भ्रमण और निवास की स्वतन्त्रता, अन्त:करण और धर्म की स्वतन्त्रता आदि। बृहत् हिन्दी कोषानुसार स्वतन्त्रता की परिभाषा दी गई है – स्वाधीनता, आजादी, बिना किसी नियन्त्रण या बन्धन के स्वेच्छानुकूल कार्य करने का अधिकार।

रसेल के अनुसार इच्छाओं की पूर्ति में प्रतिबन्ध का अभाव स्वतन्त्रता है।

प्राय: हम भौगोलिक दृष्टि से स्वच्छंदता को स्वतन्त्रता मान लेते हैं। कुछ अपने ही देशवासियों के द्वारा शासनतन्त्र संचालित होने को स्वतन्त्रता मान लेते हैं। कुछ लोग अपनी इच्छानुसार निर्बाध आवागमन, भ्रमण को स्वतन्त्रता समझते हैं और कहते हैं आज हम स्वतन्त्र हैं, देश के किसी भी भाग में स्वेच्छा से आवागमन कर सकते हैं।

कुछ लोग अपने विचारों को सबके द्वारा स्वीकृत कर लेने और स्वेच्छा से उसके क्रियान्वयन में प्राप्त सुविधा को स्वतन्त्रता मान लेते हैं। कुछ लोग अपने परिजनों से सरलता से मिलनेवाली सुविधा को ही अपने को स्वतन्त्र बोध करते हैं। कुछ लोग अपने किसी विचार को जनमानस में सहज अभिव्यक्ति को ही स्वतन्त्रता का अनुभव करते हैं, किन्तु क्या यह सच्ची स्वतन्त्रता है?

हो सकता है, हम भौगोलिक, वैचारिक दृष्टि से बाह्य रूप से स्वतन्त्र हों। किन्तु हम वास्तव में स्वाधीन नहीं हैं। हमने भले ही सिकन्दर के समान सारे विश्व पर विजय प्राप्त कर ली हो? किन्तु जब तक अपने अन्त:करण में विद्यमान काम, क्रोध, लोभादि शत्रुओं को अपने वश में नहीं कर लेते, तब तक हम स्वाधीन नहीं हो सकते। हम पराधीन ही कहे जायेंगे। हम बाह्य रूप से स्वतन्त्र होते हुए भी आध्यात्मिक दृष्टि से स्वाधीन नहीं है।

बृहत् हिन्दी कोशानुसार स्वाधीन की परिभाषा –

जो अपने ही अधीन हो, दूसरे के नहीं, स्वतन्त्र, आजाद, जो अपने वश में हो, स्वच्छंद, किसी का अंकुश, दाब न माननेवाला। स्वतन्त्रता का सदुपयोग हमें स्वाधीन बनने में सहयोग करना है। स्वतन्त्रता की परिणति स्वाधीनता में है। इसलिए आज ६८ वर्षों की स्वतन्त्रता के बाद भी हमें काम, क्रोध और लोभ पर नियन्त्रण नहीं होने के कारण इनको अपने अधीन नहीं करने के कारण, हमारे देश में अभी भी गरीबी के कारण भूखमरी, रोग, भ्रष्टाचार, अशिक्षा, अनैतिकता और मानसिक तनाव आदि से सामान्य जनता से लेकर उच्च पदस्थ लोग भी सन्तप्त हैं। स्वतन्त्रता के बाद हमने अपने पुरुषार्थ की वहीं इतिश्री मान ली और अपनी शेष ऊर्जा को अपने स्वार्थ, भोग और सुख-सुविधा में अपने ही तन-मन और परिवार-परिजन की सन्तुष्टि में लगाने लगे। अत: देश की इस विषम परिस्थिति में क्या हमारा यह कर्तव्य नहीं है कि हम सच्ची स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को अपने व्यक्तिगत और राष्ट्रीय जीवन में पुन: स्थापित करें?

प्रश्नोत्तर रत्नामालिका के श्लोक १० में शंकराचार्य जी कहते हैं – जड़ता क्या है – 'कि जाड्यं'? उत्तर में कहते हैं – पठतोऽनभ्यास – पढ़े-सुने हुए विषयों को अभ्यास-व्यवहार में न लाना। जागता कौन है ? विवेकी। निद्रा क्या है? – मूढ़ता, मूर्खता ही निद्रा है।

यदि हम श्रीशंकराचार्य जी के अनुसार अपना आत्मविश्लेषण करें, तो पायेंगे कि हम १५ अगस्त, १९४७ को स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद कुछ दिशाओं में जड़ और निद्रित भी हो गए हैं । विगत कुछ वर्षों में सक्रियता आई भी, तो वह केवल भोजन, वस्त्र, मकान और आधुनिक
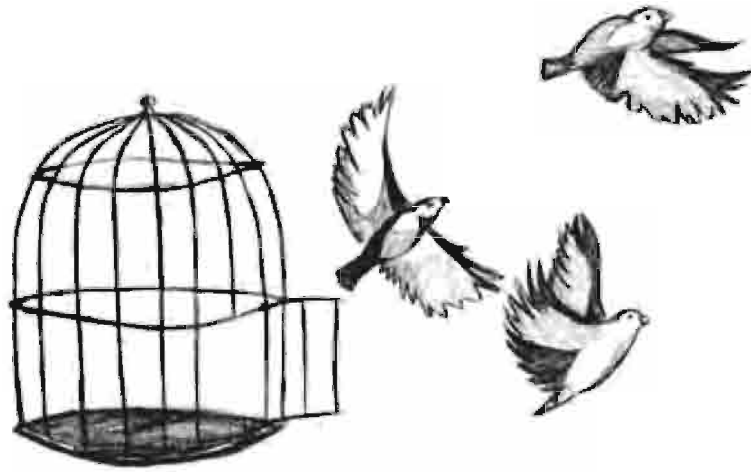
सुखोपरक वस्तुओं तक ही सीमित रही। सभ्यता, संस्कृति, नैतिकता, परस्पर प्रेम, सौहार्द और स्वमानसिक संतुलन की दृष्टि से हम जड़ और निद्रित हो गए। हमने लगभग पूर्णत: इन सबकी उपेक्षा की और करते चले जा रहे हैं। यहाँ तक कि धर्म-संस्कृति की उपेक्षा की भी एक संस्कृति बन गयी है।

'धर्मो रक्षति रक्षित:' यह भारतीय संस्कृति की उद्घोषणा है। इस देश में नि:श्रेयस्, अभ्युदय, सर्वसुखप्रद, मानव जीवन का सुसंचालक और सुनियन्त्रण कर श्रेयप्राप्ति कराने वाले धर्म के त्याग से कभी भी शान्ति नहीं मिल सकती। शाश्वत स्वतन्त्रता और स्वाधीनता प्रदायक परम आनन्द के स्वरूप की अनुभूति करानेवाले धर्म के त्याग से कभी भी सच्ची स्वतन्त्रता, स्वाधीनता और मुक्ति नहीं मिल सकती।

अत: इस देश की समृद्धि के मूल स्रोत त्याग और सेवा के संरक्षक धर्म को अंगीकार करें और अपने जीवन में स्वतन्त्रता, स्वाधीनता का उत्कर्ष करते हुए उसे आत्यन्तिक मुक्ति में परिवर्तित करें।

स्वाधीनता से आगे मुक्ति-पथ की ओर बढ़ें

हम स्वतन्त्र रहना चाहते हैं, क्योंकि हमें दूसरे की अधीनता में कष्ट होता है। दूसरे का शासन हमें पीड़ा देता है और हमारे ऊपर अत्याचार करता है। विदेशी शासक हमारे देशवाशियों पर नृशंसता करते हैं, हमें विविध दुख-यातना देते हैं, इसलिए हम स्वतन्त्र रहना चाहते हैं। तभी तो तुलसीदासजी ने कहा – '**पराधीन सम दुख जग नाहीं।**'

हमारे भीतर के काम क्रोधादि अपने अधीन कर हमें सताते हैं। इसलिये हम इन षड्शत्रुओं पर विजय पाकर स्वाधीन होना चाहते हैं।

दुर्भाग्यवश हम जन्म-जन्मान्तरों से चौरासी लाख योनियों में भटककर अत्यन्त कष्ट पा रहे हैं, किन्तु इससे मुक्त होने की नहीं सोचते। ऐसा क्यों? हमें अन्तत: इस भवबन्धन से, तन-मन की दासता, त्रिभुज – लोकैषणा, वित्तैषणा और पत्रैषणा की दासता से मुक्त होकर शाश्वत मुक्ति, सच्ची स्वाधीनता को प्राप्त करना है।

कर्तव्यहीन व्यक्ति मुक्ति प्राप्त नहीं करता

अवतार पुरुष भगवान श्रीराम, श्रीकृष्ण, श्रीरामकृष्ण ने जीवों के उद्धार हेतु इस संसार में अवतार लिया और अवतार-प्रयोजन को पूर्ण करने तक इस धराधाम में निवास किया। स्वामी विवेकानन्द चाहकर भी पुन: समाधिस्थ नहीं हो सके, क्योंकि श्रीरामकृष्ण देव ने ताला लगा दिया था। जब जगतहित रूपी माँ का कार्य सम्पन्न हो गया, तब स्वामीजी को शान्ति मिली। अपने गुरुदेव के कार्य को सम्पन्न करने के पूर्व उनके देवभूमि हिमालय की गुफाओं में समाधिस्थ होने से लेकर पवहारी बाबा से दीक्षाप्राप्ति तक किये गए सारे प्रयास विफल हुए। उन्होंने भारत से लेकर अमेरिका, देश-विदेश तक शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक-श्रम कर, जनता का मान-अपमान सहकर गुरुदेव के द्वारा प्रदत्त उत्तरदायित्व को पूर्ण किया। इस कर्तव्य के पालन के बाद ही उन्हें पूर्णत: शान्ति मिली।

ठीक वैसे ही जब तक भारत माता के अन्न-जल से पालित कोई भी व्यक्ति भारत माँ और उनकी सन्तानों की आवश्यक सेवा नहीं करता, भारत माता को स्वस्थ सुरक्षित नहीं रखता और केवल अपनी ही सुख-सुविधा में निमग्न है, तब तक वह कृतघ्न और कर्तव्यहीन है, वह सच्ची स्वतन्त्रता का अधिकारी नहीं हो सकता।

सबको यथार्थ रूप से स्वतन्त्र करें। सभी देशवासियों को भोजन, वस्त्र, आवास, शिक्षा, स्वास्थ्य प्रदान करें। देशवासियों को अत्याचार, पीड़ा से मुक्त करें। हिंसामुक्त, नशामुक्त, भ्रष्टाचार मुक्त, अशिक्षा, गरीबी, रोगमुक्त भारत बनाने का संकल्प लें। स्वयं स्वाधीन होकर सबके स्वाधीन होने में पवित्र शुद्ध परिवेश का निर्माण कर उनकी सहायता करें। उसके बाद स्वयं मुक्त होकर दूसरों को मुक्त करें, तभी सच्ची स्वतन्त्रता, स्वाधीनता होगी।

मुक्ति का अधिकारी और उसकी प्राप्ति के उपाय

देश की जनता को सुखी-समृद्ध कर, उन्हें स्वतन्त्रता से स्वाधीनता और स्वाधीनता से शाश्वत मुक्ति की ओर अग्रसर करने में सहायता कर राष्ट्र के नागरिक कर्तव्यों का पालन पूर्ण कर हम मुक्ति के अधिकारी हो सकते हैं। हम कर्तव्यनिष्ठ होकर शास्त्रवर्णित गुरु निर्देशित मुक्ति मार्ग का निष्ठापूर्वक अवलम्बन कर इस संसार के सभी बन्धनों से सदा हेतु मुक्त हो सकते हैं, वही सच्ची स्वतन्त्रता होगी।

स्वतंत्रता दिवस पर सभी देशवासी से मेरा हार्दिक अनुरोध है कि वे सम्पूर्ण भारतवासियों को सभी दुखों से मुक्त करें, उन्हें सब प्रकार से सुखी करें और उन्हें मुक्ति की ओर अग्रसर कर सच्ची स्वतन्त्रता के आनन्द की अनुभूति करें। OOO

भारत का राष्ट्रीय जीवन

विवेक वाणी

स्वामी विवेकानन्द
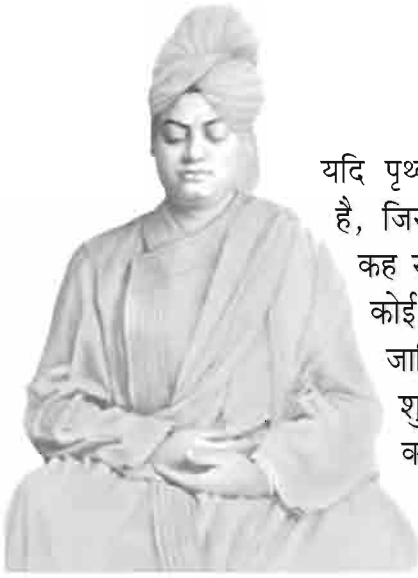
यदि पृथ्वी पर ऐसा कोई देश है, जिसे हम धन्य पुण्य-भूमि कह सकते हैं, ... यदि ऐसा कोई देश है, जहाँ मानव जाति की क्षमा, धैर्य, दया, शुद्धता आदि सद्वृत्तियों का सर्वाधिक विकास हुआ है और यदि ऐसा कोई देश है जहाँ आध्यात्मिकता तथा सर्वाधिक आत्मान्वेषण का विकास हुआ है, तो वह भूमि भारत ही है ।[१]

राजनीतिक महानता या सामरिक शक्ति की प्राप्ति करना न कभी भारत का जीवनोद्देश्य रहा है, न अब है; और याद रखो ऐसा भविष्य में भी कभी नहीं होगा ।[२]

हम जानते हैं कि हिन्दू जाति ने कभी धन को महत्त्व नहीं दिया । धन उन्हें खूब मिला – दूसरे राष्ट्रों से कहीं अधिक धन मिला, पर हिन्दू जाति ने धन को कभी जीवन का उद्देश्य नहीं माना । भारत युगों तक शक्तिशाली बना रहा, तो भी शक्ति उसका उद्देश्य नहीं बनी, उसने अपनी शक्ति का उपयोग कभी अपने देश के बाहर किसी पर विजय प्राप्त करने में नहीं किया । वह अपनी सीमाओं से सन्तुष्ट रहा, इसलिये कभी-भी किसी से युद्ध करने नहीं गया, उसने कभी भी साम्राज्यवादी गौरव को महत्त्व नहीं दिया । धन और शक्ति कभी भी इस देश के आदर्श न बने सके ।[३]

हाँ, मेरे बन्धुओ, यही हमारे देश का गौरवमय भाग्य है कि सुदूर अतीत में, उपनिषदों के काल में ही हमने संसार के समक्ष एक चुनौती रखी थी – **न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः** – ''न तो सन्तानों द्वारा और न ही सम्पत्ति के द्वारा, बल्कि केवल त्याग द्वारा ही अमृतत्व की प्राप्ति होती है ।'' एक-एक कर कई राष्ट्रों ने इस चुनौती को स्वीकार किया और अपनी शक्ति भर संसार की इस पहेली को कामनाओं के स्तर पर सुलझाने का प्रयत्न किया । वे सभी अतीत काल में असफल रहे – पुराने राष्ट्र शक्ति तथा धन की लोलुपता से उत्पन्न होनेवाले पापाचार और दु:खों के बोझ से दबकर मिट गये, और नए राष्ट्र डगमगाते कदमों से पतन की ओर बढ़ रहे हैं । इस प्रश्न का हल होना अभी भी बाकी है कि शान्ति की जय होगी या युद्ध की, सहिष्णुता की विजय होगी या असहिष्णुता की, भलाई की विजय होगी या बुराई की, शरीर की विजय होगी या बुद्धि की, सांसारिकता की विजय होगी या आध्यात्मिकता की । हमने तो युगों पहले ही इस प्रश्न का हल ढूँढ़ लिया था और सौभाग्य या दुर्भाग्य के बीच हम अपने उसी समाधान पर दृढ़तापूर्वक डटे हैं और चिर काल तक उसी पर अटल रहने को कृतसंकल्प हैं । हमारा समाधान है – असांसारिकता – त्याग ।

मानव जाति का अध्यात्मीकरण – यही भारतीय जीवन-रचना का प्रतिपाद्य विषय है, यही उसके अनन्त संगीत का मूल सुर है, यही उसके अस्तित्व का मेरुदण्ड है, यही उसके जीवन की आधारशिला है और उसके अस्तित्व का एकमात्र हेतु है । चाहे तातारों का शासन रहा हो या तुर्कों का, चाहे मुगलों ने राज्य किया हो या अंग्रेजों ने, परन्तु अपने इस सुदीर्घ जीवन-प्रवाह में भारत कभी भी अपने इस मार्ग से विचलित नहीं हुआ है ।[४]

जब मैं अपने देश के प्राचीन इतिहास का सिंहावलोकन करता हूँ, तो सम्पूर्ण विश्व में मुझे ऐसा कोई भी देश नहीं दिखता, जिसने मानवीय हृदय को उन्नत और सुसंस्कृत बनाने में भारत के समान चेष्टा की हो । इसलिये, न तो मैं अपनी हिन्दू जाति को दोषी ठहराता हूँ और न इसकी निन्दा करता हूँ । मैं तो कहता हूँ – तुमने जो कुछ किया है, अच्छा किया है; पर इससे भी अच्छा करने की चेष्टा करो ।'[५]

मैं चुनौती देता हूँ कि कोई भी व्यक्ति भारत के राष्ट्रीय जीवन का कोई भी ऐसा काल मुझे दिखा दे, जिसमें यहाँ सम्पूर्ण विश्व को हिला देने की क्षमता रखनेवाले आध्यात्मिक महापुरुषों का अभाव रहा हो । पर भारत का कार्य आध्यात्मिक है । और यह कार्य रण-भेरी के निनाद से या सैन्यदलों के अभियानों से तो पूरा नहीं किया जा सकता । धरती पर भारत का प्रभाव सर्वदा मृदुल ओस-कणों की भाँति नीरव तथा अव्यक्त रूप से बरसा है, तथापि इस प्रकार वह सर्वदा धरती के सुन्दरतम पुष्पों को विकसित करता रहा है ।[६] ○○○

१. विवेकानन्द साहित्य, (संस्करण १९८९) खण्ड ५, पृ. ५; **२**. वही, खण्ड ५, पृ. ९; **३**. वही, खण्ड १०, पृ. ४; **४**. वही, खण्ड ९, पृ. २९९-३००; **५**. वही, खण्ड ५, पृ. ९१-९२; **६**. वही, खण्ड ९, पृ. ३००;
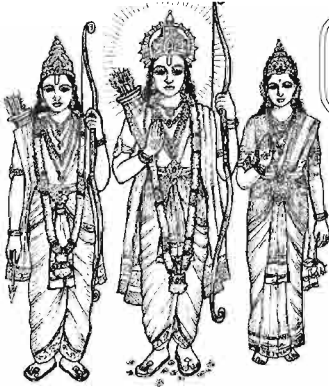
धर्म-जीवन का रहस्य (९/५)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(१९९१ ई. में विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के तत्त्वावधान में पण्डितजी के 'धर्म' विषयक प्रवचन को 'विवेक-ज्योति' में प्रकाशनार्थ टेप से लिपिबद्ध करने का श्रमसाध्य कार्य श्रीराम संगीत महाविद्यालय, रायपुर के सेवानिवृत्त प्राध्यापक स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी और सम्पादन 'विवेक-ज्योति' के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

इन्द्रिय-दमन तथा सत्य की रस्सी हो । उसमें विचार की मथानी को लपेटकर उससे दही का मन्थन किया जाय । मथने वाले के रूप में मुदिता वृत्ति का उदय हो ।

मुदिताँ मथै बिचार मथानी ।
दम अधार रजु सत्य सुबानी ।। ७/११७/९-१५

कितनी कठिन साधना है ! इनमें से हर वस्तु मनुष्य के जीवन में अत्यन्त कठिन है । इतना करने के बाद तब कहीं विमल वैराग्य का नवनीत प्राप्त होता है ।

तब मथि काढ़ि लेइ नवनीता ।
बिमल बिराग सुभग सुपुनीता ।। ७/११७/१६

परन्तु दीपक मक्खन से तो जलता नहीं है । दीपक जलाना हो, तो पहले मक्खन से घी बनाना पड़ता है । उसके लिये अग्नि जलाइए । अग्नि कौन सी है? और अग्नि को जलाने के लिए लकड़ी भी चाहिए । लकड़ी कौन-सी है? योग की अग्नि को प्रज्वलित कीजिए और उसमें शुभ और अशुभ कर्मों की लकड़ी लगा दीजिए । दोनों को जला दीजिए । और तब मक्खन घी में बदलेगा ।

जोग अगिनि करि प्रगट तब
कर्म सुभासुभ लाइ ।
बुद्धि शिरावै ग्यान घृत
ममता मल जरि जाइ ।। ७/११७ (क)

विमल वैराग्य के बाद जब ज्ञान-घृत बन गया, तो भी उसमें कहीं-न-कहीं ममता का मल शेष रह जाता है । लगता है कि हमारा सभी चीजों से वैराग्य हो गया, पर इस ममता के कण कहीं-न-कहीं छिपे रह जाते हैं ।

यह ममता कितनी गहराई में छिपी रहती है, मानो इसी सत्य का जीवाचार्य लक्ष्मणजी ने संकेत किया – महाराज, आप जरा ध्यान से देखिए, आपमें यह ममता कहाँ से आ गयी । लोगों की दृष्टि में धनुष राम के द्वारा टूटा, परन्तु श्रीराम कहते हैं – मैंने नहीं तोड़ा । लक्ष्मणजी भी कहते हैं – प्रभु ने नहीं तोड़ा । उनमें न अहंता है और न ममता । 'मैं' और 'मेरा' से ऊपर उठना – इसी में धर्म का सारा रहस्य छिपा है । किन्तु परशुरामजी कहते हैं – मैंने इक्कीस बार क्षत्रियों का संहार किया है । मैं बाल ब्रह्मचारी हूँ और साथ-साथ मेरे हृदय में सम्पत्ति की रंचमात्र भी कामना नहीं है । सारा संसार जानता है कि मैं क्षत्रिय कुल का द्रोही हूँ –

बाल ब्रह्मचारी अति कोही ।
बिस्वविदित क्षत्रियकुल द्रोही ।। १/२७२/६

उन्होंने यह मान लिया था कि श्रेष्ठता ब्राह्मण वर्ण में है और क्षत्रियों को दण्ड देना उनका कर्तव्य है । आवश्यकता पड़ने पर संघर्ष भी किया जाता है, युद्ध भी किया जाता है, परन्तु उस युद्ध के पीछे जो वृत्ति होनी चाहिये, उसके विषय में गीता में भगवान कृष्ण ने कहा – जिसके हृदय में कर्तृत्व और फल की आकांक्षा नहीं हैं, वह यदि सारे संसार को मार डाले, तो भी उसे पाप नहीं लगता –

यस्य नाहंकृतो भावो बुद्धिर्यस्य न लिप्यते ।
हत्वापि स इमाँल्लोकान्न हन्ति न निबध्यते ।। १८/१७

एक सज्जन बोले – भगवान ने तो यह बड़ी भयावनी बात कह दी । मार देने से पाप क्यों नहीं लगेगा ! मैंने कहा – एक भौतिक दृष्टान्त लीजिए । दो व्यक्तियों में झगड़ा हो और एक व्यक्ति दूसरे को मार डाले । तो जो मारा गया था, उसके भाई ने कहा – इसने मेरे भाई को मारा है, तो हम इसे मारेंगे । इस प्रकार बदला लेने के लिए उसने उस मारनेवाले को मार डाला । परन्तु नियम-कानून के अनुसार वह पकड़ा गया, यह कहकर वह नहीं छूट सका कि इसने मेरे भाई को मारा, इसलिए मैने इसको मारा । वह व्यक्ति जब न्यायालय में लाया गया, तो न्यायाधीश ने उसे मृत्युदण्ड दे दिया, उसे फाँसी पर चढ़ाने की आज्ञा दे दी । उसने तो अपने भाई के मारे जाने का बदला लेने के लिये मारा था, तो भी उसे सजा मिली; परन्तु जिस न्यायाधीश ने कैदी को मृत्युदण्ड दे दिया, उसके बदले में तो उसे वेतन भी मिलेगा और अन्य सुविधाएँ भी मिलेगी । क्योंकि न्यायाधीश के मन में कोई राग-द्वेष नहीं है । यह एक भौतिक दृष्टान्त है ।

अत: संघर्ष और युद्ध करते हुए भी हमारा मन इस

सत्य को न भूले कि यह व्यवहार का जो 'सत्य' है, उसके लिये संघर्ष करते हुए भी हम द्वेष की वृत्ति से प्रेरित न हों। परशुरामजी ने यह मान लिया था कि सारा अन्याय क्षत्रियों में ही है और उन्हें मार डालना ही धर्म है। परन्तु अन्त में भगवान उन्हें यह बताना चाहते थे कि क्षत्रिय के रूप में, ब्राह्मण के रूप में, वैश्य के रूप में, शूद्र के रूप में और समस्त मानव मात्र के रूप में एकमात्र वे ही तो विद्यमान हैं।

भले ही बीच का सारा उतार-चढ़ाव था, पर इसकी परिणति कैसी सुन्दर हुई ! अखण्ड से प्रारम्भ हुआ, फिर चाप-खण्ड देखकर क्रोध आया और अन्त में भगवान राम की बातों पर जब उन्होंने गहराई से विचार किया, तो उनकी बुद्धि के ऊपर का आवरण दूर हो गया। हम ईश्वर के अंश ही हैं, पर हमारी बुद्धि पर एक आवरण छा गया है, उसी को दूर करना है। बुद्धि का यह आवरण दूर हो जाने के बाद उन्हें कैसा आनन्द आया –

सुनि मृदु गूढ़ बचन रघुपति के।
उघारे पटल परसुधर मति के ।। १/२८३/६

बोले – हे राम, इस धनुष को हाथ में लो और जरा खींचकर तो दिखाओ। भगवान राम ने हाथ नहीं बढ़ाया, धनुष स्वयं खिचा हुआ चला गया –

राम रमापति कर धनु लेहू।
खैंचहु मिटै मोर सन्देहू ।।
देत चापु आपुहिं चलि गयऊ।
परसुराम मन विस्मय भयऊ ।। १/२८४/७-८

परशुरामजी ने कर्तृत्वरहित भगवान राम से मानो पूछा था – तुम जो कहते हो कि धनुष तो छूते ही, बिना तोड़े ही टूट गया, यह भला कैसे सम्भव है? तुमने तोड़ा होगा, तभी तो टूटा होगा। भगवान ने दिखा दिया – महाराज, धनुष बिना तोड़े भी टूट सकता है और बिना खींचे भी खिंच सकता है। यह केवल देखने और दिखाने का ही खेल है। यह सत्य जब उन्होंने परशुरामजी को दिखाया, तो वे इतने आनन्दित हुए, ऐसा बढ़िया समर्पण हुआ कि बोले – यह धनुष तुम ले लो। किसी ने परशुरामजी से पूछा – आपको पराजय का अनुभव नहीं हुआ? बोले – नहीं, आनन्द का अनुभव हुआ। बोले – जिस धनुष को मैंने इतने दिनों तक कन्धे पर ढोया और जिसका रावण के वध के लिये उपयोग नहीं कर सका, उस धनुष को ईश्वर ने, ईश्वर के पूर्णावतार ने ले लिया, तो मेरा भार हल्का हो गया। उन्हीं के द्वारा यह कार्य सम्पन्न होगा। यह अन्तिम विजय की चरम स्थिति है, चरम धर्म की स्थिति है कि समर्पण की पराकाष्ठा हो जाय। इसमें वर्ण, आश्रम आदि का सारा अभिमान नष्ट हो जाता है।

धर्म के इस क्रमिक विकास के सन्दर्भ में दो वाक्यों में ही गुरु वशिष्ठ कहते हैं – यह तो धर्म की बहुत बड़ी गुत्थी है, निर्णय ही नहीं हो पा रहा है। राम बोले – जो भरत कहेंगे, मैं वही करूँगा। भरत बोले – जो राम कहेंगे, वह मैं करूँगा। यह धर्म का और भी परिष्कृत रूप हो गया – वही कीजिये, जिससे सबका धर्म भी रह जाय और सबका हित भी हो –

महाराज अब कीजिए सोई।
सबकर धरम सहित हित होई ।। २९०/८

सबका धर्म रह जाय, इसका क्या अर्थ है? भीष्म बोले – यदि मैं भगवान से शस्त्र न उठवा दूँ, तो मैं गंगापुत्र नहीं, शान्तनु का पुत्र नहीं; अगले दिन भगवान ने शस्त्र उठा लिया। लोग हँसने लगे। भीष्म सत्यवादी हैं, पर श्रीकृष्ण ने प्रतिज्ञा की और छोड़ भी दिया।

वस्तुत: धर्म तो भगवान कृष्ण में ही था, क्योंकि भीष्म के लिए तो यह सम्भव ही नहीं था। कृष्ण साक्षात् ईश्वर हैं, अत: उनकी प्रतिज्ञा भला कौन तुड़वा सकता था। भगवान ने धर्म की सर्वोच्च व्याख्या कर दी। उनको लगा कि यदि मैं शस्त्र नहीं उठाऊँगा, तो मैं भले ही सत्यवादी सिद्ध हो जाऊँ, परन्तु लोग भीष्म को असत्यवादी मान लेंगे। इसमें धर्म की जीत कहाँ हुई? मैं भले ही असत्यवादी मान लिया जाऊँ, परन्तु भीष्म सत्यवादी सिद्ध हो। भगवान कृष्ण की धर्म-दृष्टि कैसी उत्कृष्टतम रही होगी। वे बोले – नहीं, नहीं, मुझे सत्यवादी नहीं कहलाना है। लोग भीष्म को ही सत्यवादी कहें। इस पर भीष्म इतने गद्‌गद हो गये कि श्रीकृष्ण शस्त्र लेकर दौड़े, तो उन्होंने शस्त्र रख दिया और हँसने लगे। बोले – महाराज, मैंने थोड़े ही आपसे शस्त्र उठावाया, यह तो मेरी बात रखने के लिए आपके शील ने शस्त्र उठवा दिया। यदि आपने मुझे मारने के लिये शस्त्र उठाया हो, तो मार डालिए। तब सचमुच ही पता चल गया कि उन्होंने मारने-वारने के लिए शस्त्र नहीं उठाया था।

महाभारत काल में धर्म की परिणति केवल श्रीकृष्ण के जीवन में है, परन्तु रामायण काल में भगवान राम को भी यही चिन्ता है। भगवान राम कैसा अनोखा वाक्य कहते हैं? बोले – भरत, मैंने सुना है कि तुम मुझे लौटाने हेतु आए हो, तो कोई बात नहीं है, मेरा सत्य जाय, तुम्हारा

सत्य रहे, तुम कहो तो लौट चलूँ –

भरतु कहहि सोइ किएँ भलाई ।। २/२५९/८

देवता बेहोश होने लगे – हे राम, अब क्या होगा? अब भरत कहेंगे और राम लौट जायेंगे । लेकिन भरत जब खड़े हुए तो उन्होंने यही कहा – महाराज, आपको संकोच में डालकर मैं अपने सत्य की रक्षा करूँ, ऐसा नहीं होगा । आप जिसमें प्रसन्न हों, वही कीजिए –

जेहि बिधि प्रभु प्रसन्न मन होई ।
करुणा सागर कीजिअ सोई ।। २/२६८/२

यहाँ धर्म का एक नया अर्थ मिलता है । श्रीराम को भरतजी के धर्म की चिन्ता और भरतजी को श्रीराम के धर्म की चिन्ता – यही धर्म की सर्वश्रेष्ठ स्थिति है । केवल व्यक्ति का नहीं – सबका धर्म और सबका हित होना चाहिये । इस प्रकार सभा समाप्त हुई कि देवता भरत को धन्य-धन्य कहने लगे और श्रीराम की जय के नारे लगाने लगे –

धन्य भरत जय राम गोसाई ।। २/३०८

देवता सबसे अधिक भरत से ही डरते थे, परन्तु जब वे नारे लगाने लगे, तो क्रम उलट दिया । पहले कहना चाहिए राम की जय और उसके बाद भरत की जय । उन्होंने दोनों के लिये दो शब्द चुने – धन्य भरत और जय राम गोसाई । पहले कहा – 'धन्य है भरत' और फिर कहा 'जय हो राम की' । किसी ने पूछा – क्रम क्यों बदल दिया? और दोनों के लिए शब्द अलग-अलग क्यों चुनें? देवताओं ने कहा – श्रीराम वन में रह गये, तो यही लगा कि राम की जीत हो गई, राम के सत्य की जीत हो गई; परन्तु धन्य तो भरत हैं जिन्होंने राम को जिताया । वे यदि कह देते – लौट चलो, तो क्या होता, अत: पहले प्रणम्य तो भरत ही हैं । इसीलिये गुरु वशिष्ठ ने कहा – भरत, तुम जो समझोगे, कहोगे और करोगे, वही धर्म का सार हो जायेगा –

समुझब कहब करब तुम्ह जोई ।
धरमसारु जग होइहि सोई ।। २/३२२/८

आज इतना समय खिंच गया और कुछ विलम्ब हो गया । रामायण की यह परम्परा है कि विलम्ब नित्य तो न हो, परन्तु एकाध दिन अवश्य हो ।

सारे कर्मों में तो समय का ध्यान रखना चाहिये, परन्तु जब श्रीराम का जन्म हुआ, तो बेचारा सूर्य ही एक महीने तक रुक रह गया । भला सोचिए कि समय का भान कहाँ रह गया ! उधर भगवान राम गुरुजी से कहकर गये – लक्ष्मणजी को ले जाऊँगा, तो नगर दिखाकर तत्काल ले आऊँगा –

नगर देखाई तुरत लै आऊँ ।। १/११७/६

परन्तु गये, तो लौटने में देरी हो गई । डर लगा – गुरुजी से तो मैंने कह दिया था कि जल्दी लौटूँगा । वे कहेंगे – तुमने कहा था जल्दी लौटकर आऊँगा और इतनी देर से आ रहे हो? क्या यही तुम्हारा सत्य है? देर भी क्यों नहीं लगती? क्योंकि जनकपुर के सभी बालक उन्हें अपने-अपने घर ले जा रहे थे –

सहित सनेह जाहिं दोउ भाई ।। १/२२४/२

जब सबके घर जा चुके, तब याद आया कि गुरुजी से मैंने कहा था कि जल्दी आऊँगा । डर के मारे गुरुजी के पास जाकर हाथ जोड़कर खड़े हो गये । गुरुजी हँसे । बोले – देखो, मैंने तुमसे पहले ही कह दिया था । जब तुमने कहा कि नगर दिखाकर तत्काल ले आऊँगा, तो मैंने कह दिया था – हे राम, तुम नीति की रक्षा कैसे नहीं करोगे –

सुनि मुनीसु कह बचन सप्रीती ।
कस न राम तुम्ह राखहु नीती ।। १/२१८/७

तुमने पूछा, आज्ञा ली – यह मर्यादा और धर्म के अनुकूल है । परन्तु वह आगे जो तुमने कहा – नगर दिखाकर तत्काल ले आऊँगा, तो उस पर मुझे विश्वास नहीं था । – क्यों? बोले – मैं जानता था कि तुम चाहे जितने भी बड़े धार्मिक हो, मर्यादामय हो, परन्तु प्रेम के वशीभूत होकर अपने सेवकों को सुख देने वाले हो –

धरम सेतु पालक तुम्ह ताता ।।
प्रेम बिबस सेवक सुखदाता ।। १/२१७/८

जब यह सामने आवेगा तो तुम धर्म को अवश्य भूलोगे, मर्यादा को अवश्य भूलोगे । और वही हुआ ।

श्री सीताजी के साथ भी यही हुआ । जब वे श्रीराम को देखती हैं, तो सखियों ने पहले तो कहा – नेत्र खोलकर देखिये; और जब वे देखने लगीं, तो सब कुछ भूल गयीं । सखियों को डर लगा कि विलम्ब हो रहा है । अब क्या होगा, माँ क्या कहेंगी? क्यों इतनी देर लगा दी? तब वे बोलीं – कल इसी समय यहाँ फिर आयेंगे –

पुनि आउब एहि बेरिआ काली ।। १/२३३/६

प्रीति रस में थोड़ा विलम्ब होने में भी आनन्द है । प्रेम का उदय हो, तो काल में ही स्थिति नहीं होनी चाहिये । यह श्री सीताजी और श्री रामजी के प्रेम का प्रसंग है, अत: इस विलम्ब को हम लोग भगवत्कथा के प्रेमामृत का ही परिणाम माने । **(समाप्त)**

सारगाछी की स्मृतियाँ (४६)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य महासचिव महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

प्रश्न – कल्प के अन्त में यह सृष्टि निर्जीव हो जाती है, फिर कल्प के आरम्भ में नवीन सृष्टि होती है। क्या इसका कोई निर्धारित समय नहीं है? क्या कोई नियम नहीं है, कितने दिनों तक जगते रहेंगे, कितने दिनों तक सोते रहेंगे?

महाराज – कार्य करते-करते जब हमारी आज की प्राण क्षमता समाप्त हो जाती है, तब हम सो जाते हैं। फिर कुछ देर सोने के बाद हम जाग जाते हैं। इस सृष्टि का नियम भी बहुत कुछ ऐसा ही है। इस देह-धारण के समय प्राण की जो गति प्राप्त हुई थी, उससे यह जीवन बयासी वर्ष चला, इसके बाद अपने आप ही निष्क्रिय हो गया। क्यों ऐसा होता है, उसे कहा नहीं जा सकता। जो हुआ, वही माया है।

प्रश्न – हम लोगों को श्रीमाँ की अपेक्षा पगली मामी को अधिक सम्मान देना उचित है। पगली मामी के नहीं रहने पर हम लोग माँ को कैसे समझ पाते?

महाराज – क्या वे लोग मनुष्य हैं?

प्रश्न – ठाकुर के देहत्याग के पश्चात् माँ की भी चले जाने की इच्छा हुई थी। ठाकुर के जीवन काल में तो ऐसी इच्छा नहीं हुई थी?

महाराज – वे तब अन्यत्र कहाँ जातीं? क्योंकि स्वयं परब्रह्म स्वरूप ठाकुर वहाँ विद्यमान थे।

प्रश्न – जो निर्गुण हैं, उन्हें हम सगुण-साकार देखते हैं, वह तो माया के कारण है। यह माया क्या हमारी मानसिक अवस्था के अनुसार होती है?

महाराज – जो निर्गुण हैं, वे ही सगुण, साकार, निराकार सब कुछ हैं। स्वामीजी तो बहुत अद्वैत झाड़कर (व्याख्यान देकर) आए, किन्तु जब विदेश से वापस आकर माँ को प्रणाम करने जाते हैं, तो इस भय से गंगा में स्नान करते हैं, गंगाजल पीते हैं, कि यदि कहीं अपवित्र हो गए हों। महाराज (राजा महाराज) तो पास जा नहीं पाते थे, काँपते थे।

ठाकुर ने जब कहा, "अरे ! मैं तो सब मुखों से खाता हूँ।" तब बाबूराम महाराज ने कहा, "नहीं, इसी मुख से खाना होगा।" इस प्रेम के निकट वह सब अद्वैत उड़ जाता है। वैष्णव ग्रंथों में कहते हैं, – निर्गुण ब्रह्म – श्रीकृष्ण की अंगकान्ति है। हमारे गीत में भी वैसा ही है – "तव हासिराशि" – तुम्हारा हास्यपुंज।

श्रीरामचन्द्र को भारद्वाज आदि केवल बारह ऋषि पहचान सके थे, शेष सभी निर्गुण ब्रह्म के चिन्तन में बैठे रहे। हमारे लिये तो बड़ी सुविधा है। हम सब जानते हैं। कोई कहता है अद्वैत अच्छा है, तुरन्त हम कहने लगते हैं, सगुण-फगुण सब माया है। फिर जैसे ही प्रेम की बात उठी – तब कहाँ पड़ा रह गया तुम्हारा ब्रह्म-ट्रह्म, हमारा गदाई है। देखो, हमलोग साधन-भजन हीन हैं, इसीलिए केवल विचारों को लेकर विवाद करते हैं। यदि हम सचमुच भगवान को चाहते हैं, तो हम ध्यान में बैठ जाएँगे, इसके बाद वे भगवान ही बता देंगे कि वे क्या हैं। ध्यान करके ही उनका स्वरूप जान पाओगे। इसीलिए तो वैष्णव लोग ज्ञान-विचार का निषेध करते हैं। वे लोग कहते हैं – बैठकर केवल माला-जप करो, स्वयं ही सब कुछ जान जाओगे।

२०-०९-१९६०

महाराज – सुनो, सुनो, यह श्लोक सुना है? यह बहुत कुछ हम लोगों के भाव से सम्बन्धित है –

अन्त: शैवो बहि: शाक्त: सभायां वैष्णवमत:।
नानारूपधरा: कौला: विचरन्ति महीतले।।

भीतर अद्वैत ज्ञान रहेगा, बाहर ज्ञानमिश्रित भक्ति होगी तथा व्यवहार में द्वैतभाव होगा, अत्यन्त विनम्रता होगी, सदाचार होगा।

हमलोगों का भाव देखो न, अद्वैत को समझ लिया है, किन्तु उसे लेकर झगड़ा या वाद-विवाद नहीं करते। हमलोग ठाकुर के घर की मिट्टी रखते हैं, महाप्रसाद खाते हैं, देखने से लगेगा कि कट्टर भक्त, किन्तु अन्दर से सभी सार-तत्त्व को जान लिया है। बात-बात में हमलोग ठाकुर के ऊपर निर्भर होकर पड़े हैं। दोनों हाथों से ठाकुर को पकड़ना। सब कर्मत्याग कर, सभी इन्द्रियों के द्वारों को बन्द कर केवल मन में जो छिद्र (केन्द्र) है, उसमें आत्मसमाहित (आत्मकेन्द्रित) होने पर ही मुक्ति मिलेगी। जो लोग कई जन्मों से तपस्या कर रहे हैं, वे गोपाल की माँ के समान हैं, इसी संसार में आनन्द प्राप्त कर सकते हैं। यह संसार भले ही खराब हो, किन्तु एक दूसरा चिन्मय संसार है, आनन्दमय कोश का संसार है। लेकिन वहाँ शैतान की शक्ति नहीं है।

२३-९-१९६०

महाराज – उस दिन जो परिव्राजक साधु आए थे, उन्होंने एक अच्छी बात कही थी। जब मैंने प्रश्न किया कि पेट कैसे चलता है? उत्तर मिला किसी दिन मैं चला लेता हूँ और किसी दिन भगवान चला देते हैं। अर्थात् जिस दिन कुछ मिल जाता है, उस दिन भगवान चलाते हैं और जिस दिन कुछ नहीं मिलता है, उस दिन मैं चला लेता हूँ। अर्थात् उपवास करके चलाता हूँ।

एक बार सिलेट में मैं एक मित्र के घर गया। वहाँ एक सुन्दर बालक आकर उपस्थित हो गया। उसे मैंने बड़े यत्न से अपने पास रखा। जब वह खाकर जाने लगा, तो उसे एक पान दिया गया। तब देखा कि उसने आधा पान खाकर शेष आधे पान को जेब में रख लिया। पूछने पर कहा – "रास्ते में खाऊँगा।" उसने शरत् महाराज से दीक्षा ली। बाद में वह साधु होना चाहता था। उसने कहा कि वह सिलेट आश्रम में रहेगा। मैं किसी प्रकार भी सहमत नहीं हुआ। जिसमें इतनी हिसाबी बुद्धि है, वह कैसे भगवान पर निर्भर होगा? बाद में उसने डॉक्टर की पढ़ाई की। विवाह किया है। दूसरी जगह होने पर वह साधु हो जाता एवं भवन-सम्पत्ति की अच्छी देखभाल करता, किन्तु मैं उसकी सामान्य ढंग से स्वाभाविक उन्नति चाहता हूँ।

कार्य करने से मन अच्छा रहता है, शरीर के दुख-कष्ट की ओर मन नहीं जाता। आज सुबह आँख में तेल डाला, बड़ी पीड़ा हुई थी। ऐसी स्थिति में शरीर में दूसरी जगह पर तेल लगाने से देखता हूँ कि तब आँख में थोड़ी-सी भी पीड़ा नहीं थी। इससे यह सिद्ध होता है कि मैं शरीर नहीं हूँ। मन यहाँ बैठा है और कोलकाता में लड़का मर गया, तो तनिक भी पता नहीं चलेगा। किन्तु मैं मन नहीं हूँ, यह बात समझना कठिन है। इसके लिये मन को किसी पवित्रतम वस्तु के साथ लगाकर रखने से वह उन्नत होकर मुक्ति का मार्ग हो जाता है।

जो लोग कर्मोन्मादी (कर्म में पागल) हैं, वे खराब नहीं हैं। उनकी उन्नति हो रही है, किन्तु संन्यासी का जीवन वैसा नहीं होता। कर्म तो मैंने भी किया, कर्म में उन्मत्त हो गया था। किन्तु भीतर-ही-भीतर उपासना, ज्ञान और निदिध्यासन रहने से इच्छानुसार उस कर्म से हटा जा सकता है। वैसा नहीं होने पर कर्म बन्धन का कारण बनकर साधक को पतित कर देता है।

मैं स्वीकार करता हूँ, तुम लोगों की असुविधा की बात पूछने वाला कोई नहीं है ! लेकिन इसका क्या उपाय है? जब उपाय ही नहीं है, तो सत्य को पकड़े रहो, व्यर्थ पश्चात्ताप करके समय नष्ट करने से क्या होगा ! क्या शुभ परिवेश की प्रतीक्षा में बैठे-बैठे समय नष्ट करोगे? या जो मिलता है, उसी से पुरुषार्थ करोगे? मुझे तो किसी की भी सहायता नहीं मिली। किन्तु इतना तो समझता हूँ कि ऐसा न होने से तुम लोग आए क्यों?

यदि गीता, श्रीरामकृष्णवचनामृत, स्वामीजी की ज्ञान, कर्म, भक्ति और योग की चार पुस्तकें आजीवन पढ़ो, तो फिर कोई चिन्ता नहीं। ठीक-ठीक आगे बढ़ोगे। असली बात है (तत्त्व में) डूबने की चेष्टा करो, ऐसा नहीं करने से इस संसार की ज्वाला में डूब जाओगे।

गीता में श्रेष्ठ योग कौन-सा है? 'तपस्विभ्यो ... योगीनामापि...' अर्थात् मेरा भक्त श्रेष्ठ है। ज्ञान, कर्म, भक्ति, योग, इन चारों के अतिरिक्त कोई भी सम्पूर्ण नहीं है, अर्थात् ईश्वर के साथ योग नहीं होता। ज्ञान, कर्म और भक्ति ठीक प्रकार से हो रही है, इसका प्रमाण योग में है। देखो कि मन ठाकुर के चिन्तन में आनन्द से परिपूर्ण हो रहा है या नहीं !

तत्त्व और उसका व्यवहार (आचरण) एक साथ होना चाहिए। ऐसा नहीं करने से इस लोक में ऐसा कुछ कर बैठे कि उस खराब उदाहरण से कई लोगों का मन विक्षुब्ध हो गया। यद्यपि किसी के मन को विक्षुब्ध नहीं किया जा सकता, जो विक्षुब्ध होना चाहता है, उसका ही किया जा सकता है। **(क्रमशः)**

हिमालय की गोद में स्वामी विवेकानन्द

मोहन सिंह मनराल, अलमोड़ा

(गतांक का शेषांश)

बाबा अमरनाथ दर्शन और इच्छामृत्यु का वरदान

अमरनाथ की गुफा समुद्र तल से १२,७२९ फुट की ऊँचाई पर स्थित ३० फुट चौड़ी, ६० फुट लम्बी और १५ फुट ऊँची, पत्थर की बनी है। इसकी छत से टपकती बूँदें जमकर विशाल हिमशिवलिंग का निर्माण करती है, जो चन्द्र-कलाओं के आकार में घटता-बढ़ता है। सर्वप्रथम चरवाहों के दल ने इस गुफा और शिवलिंग की खोज की थी। तब से लाखों तीर्थयात्री हर साल इसके दर्शन के लिए जाते हैं। इस गुफा में स्थित बाबा अमरनाथ के दर्शनार्थ वीरेश्वर शिव के अंशावतार स्वामी विवेकानन्द ने भी प्रस्थान किया। स्वामीजी के अतिरिक्त लगभग तीन हजार साधु भी जा रहे थे। सायंकाल स्वामीजी को घेरकर अनेक साधु उनसे सत्संग करते। प्रज्वलित अग्नि के चारों ओर बैठे सन्तों का दृश्य अनुपम होता ! मानो उस स्थान का सब कुछ ब्रह्ममय हो गया हो। ३० जुलाई को वे लोग चन्दनबाड़ी पहुँचे।

इसके बाद पाँच नदियों के संगमस्थल पंचतरणी जाने का मार्ग सँकरा था। १ अगस्त को वहाँ पहुँचकर पाँच लघु सरिताओं के ठण्डे जल में स्वामीजी ने स्नान किया। ऐसा कहा जाता है कि इस स्थान पर शिवजी ने अपनी जटाओं को निचोड़ा था। अस्वस्थ होने के बावजूद स्वामीजी ने इस परम्परा का निर्वाह किया। असहज ठण्ड से उनकी बाँयी आँख में खून जम जाने से एक दाग बन गया, जो हमेशा वैसा ही बना रहा। २ अगस्त को श्रावणी पूर्णिमा थी और हिन्दुओं का प्रसिद्ध रक्षाबन्धन का त्यौहार था। रात्रि २ बजे ही यात्रियों की प्रथम टोली ने कड़कड़ाती ठण्ड में छावनी से प्रस्थान किया। थोड़ी देर बाद स्वामीजी ने भी धवल चाँदनी के शीतल प्रकाश में देवाधिदेव महादेव के दर्शनार्थ प्रस्थान किया। थकान, भूख, शक्ति से बेहाल यात्रियों की टोली एक स्वर में 'हर हर बम बम' 'बाबा अमरनाथ की जय' का उद्घोष करते हुए आगे बढ़ रही थी। प्रकृति के साथ मानव की यह संघर्ष साधना, श्रद्धा और उत्साह का अद्भुत संमिश्रण था, जिसे स्वर देने वाले प्रचण्ड श्रमवीर स्वामीजी उस टोली के साथ चल रहे थे। अपने एक उद्बोधन में उन्होंने कहा था, 'मानवीय प्रगति प्रकृति के साथ सतत संघर्ष से हुई है, उसके अनुसरण से नहीं।' सतत संघर्ष से प्राप्त मंजिल अब यात्रियों के सम्मुख थी।

अमरनाथ की गुफा जिस घाटी में स्थित है, वहाँ पहुँचते सूर्योदय हो गया। हिमनद के किनारे मील तक चलने के बाद प्रवाहमय जलधारा दिखाई पड़ी, जिसमें यात्रीगण स्नान करने लगे। स्वामीजी थोड़ा पीछे रह गये थे, इसलिए निवेदिता उनकी प्रतीक्षा करने लगी। काफी देर बाद स्वामीजी ने आकर कहा, 'मैं स्नान करने जा रहा हूँ। तुम लोग आगे बढ़ो।' विगलित तुषारधारा में स्वामीजी ने स्नान किया, नागा-साधुओं के साथ देह में भस्म लगाया और मात्र कौपीन

धारण कर शिवमय स्वामीजी ने देहातीत अवस्था में गुफा में प्रवेश किया। चिर धवल शिवलिंग के सम्मुख घुटने टेककर, फिर दण्डवत बारम्बार प्रणाम किया। यह चिर प्रतीक्षित बाबा अमरनाथ का दर्शन था। सामने बृहत् चिर तुषारमण्डित महादेव का हिमलिंग अपनी कान्ति बिखेर रहा था। स्वामीजी ने दोनों हाथ फैलाकर शिवशंकर के पादपद्मों का स्पर्श किया। उस समय उनकी शारीरिक और मानसिक दशा बहुत थका देनेवाली स्थिति में पहुँच गई, वे कठिनाई से स्वयं को मूर्छित होने से बचा सके। अपने भावावेग को संयमित करने के लिये वे शीघ्रता से बाहर आ आये। उनका मुख-मण्डल आरक्त हो उठा। उनके नेत्रों के सम्मुख मानो शिवलोक के समस्त द्वार उन्मोचित हो गये थे। उन्होंने महादेव के श्रीचरणों का स्पर्श कर लिया था। बाद में उन्होंने बताया कि कहीं वे मूर्छित न हो जाएँ, इसलिए उन्हें अपने आपको कठोरता से सँभालना पड़ा। गुफा से बाहर लौटते समय स्वामीजी को कबूतरों का वहा जोड़ा दिखाई पड़ा, जिसके दर्शन से यात्रा सफल मानी जाती है। स्वामीजी ने अपनी यात्रा की सफलता का समाचार निवेदिता को सुनाते हुए कहा, "आज मुझे साक्षात् शिव का दर्शन हुआ, देवाधिदेव ने मुझे इच्छा-मृत्यु का वरदान दिया है।" ऐसी अद्भुत दर्शनानुभूतियों से अभिभूत स्वामीजी शिवमय हो निवेदिता और अन्य यात्रियों के साथ पहलगाम पहुँचे। शिष्यमंडली स्वामीजी को अपने बीच पाकर अपार हर्षित हुई। पहलगाम से इस्लामाबाद, पाण्डेट्ठस्थान होते हुए वे ८ अगस्त की रात को श्रीनगर पहुँच गये।

८ अगस्त से ३० सितम्बर तक दो माह स्वामीजी ने श्रीनगर में निवास किया। इस अवधि में वे सदा शिव के

ध्यान में निमग्न रहे। वे अपने गुरुभाई ब्रह्मानन्दजी को २५ अगस्त के पत्र में इस समय का वर्णन करते हैं, ''गत दो महीने से मैं आलसी की तरह दिन बिता रहा हूँ। मनोरम झेलम के वक्षस्थल पर नाव में तैर रहा हूँ।'' इस समय वे बहुधा अपनी छोटी नाव पर सवार होकर दूर निकल जाते, जहाँ एकान्त, चिरशान्त, निर्जन तट और मात्र खग-कलरव होता, फूल और लताओं से ढकी घने वनों वाली धरणी की नीरवता होती। इस एकान्त में वे घण्टों आत्म-चिन्तन में निमग्न रहते, मानो चतुर्दिक आनन्द-ही-आनन्द, शिव-ही-शिव, सुन्दर-ही-सुन्दर विद्यमान हो।

अमरनाथ दर्शन के कुछ पूर्व और बाद में स्वामीजी का मन शिवभाव में विभोर था, परन्तु किसी अज्ञात कारणवश उनका मन शिव से शक्ति की ओर आकृष्ट हो गया था। निवेदिता अपने संस्मरणों में लिखती हैं, ''एक बार उन्होंने (स्वामीजी) हममें से कई लोगों को कहा था, वे जिधर भी दृष्टिपात करते हैं, उन्हें जगदम्बा की उपस्थिति का बोध होता है।''

उस समय उनका अधिकांश समय माँ के ध्यान में बीतता था। उन्हें न भूख-प्यास थी, न शरीर-बोध। जो कभी प्रचण्ड ओजस्वी वक्ता था, जिसकी इच्छामात्र से समय की गति पलट जाती थी, वह वहाँ मात्र अरण्यवासी, वैरागी, बनकर रह गया। वे 'माँ माँ' करुण क्रन्दन करते और व्याकुलता से समाधि में डूब जाते। इस तीव्र व्याकुलता ने उन्हें माँ जगदम्बा के अद्भुत दर्शन का सौभाग्य प्रदान किया। अपनी इन अनुभूतियों को उन्होंने 'काली माता' नामक कविता में व्यक्त किया –

नाम है आतंक तेरा, मृत्यु तेरे श्वास में है,
चरण उठकर सर्वदा को विश्व एक मिटा रहा है,..
साहसी जो चाहता है, दुख मिल जाना मरण से,
नाश की गति नाचता है, माँ उसी के पास आई।।
(कवितावली पृ. ८)

इस कविता के बारे में उन्होंने अपनी शिष्याओं से कहा – ''देखा यह सब सत्य है, अक्षरश: सत्य है। माँ सचमुच ही उसके पास आती है। मैंने अपने जीवन में इसे प्रत्यक्ष किया है, क्योंकि मैंने साक्षात् मृत्यु का आलिंगन किया।''

क्षीर भवानी की अनुभूतियाँ : जीवन का नया अध्याय

अब हम स्वामीजी के जीवन की उस महत्त्वपूर्ण यात्रा का वर्णन करेंगे, जो हिमालय की गोद में उनके जीवन में एक नया अध्याय खोल देता है। ३० सितम्बर को माँ काली के अपूर्व भाव में मग्न विवेकानन्द क्षीर भवानी के पवित्र नदी तट पर पहुँचे। माँ के मन्दिर में दूध निवेदित होने से, इसे 'क्षीर भवानी' कहते हैं। यह मन्दिर विदेशी आक्रमणकारियों द्वारा खण्डित कर दिया गया था। क्षीर भवानी के जंगलों में स्वामीजी उग्रतर तपस्या में लीन हो गये, वहाँ की अधिकांश अनुभूतियाँ अप्रकट रहीं, स्वामीजी द्वारा कथित कुछ बातों का उल्लेख किया जा रहा है।

क्षीर भवानी में माँ के असहाय शिशु के रूप में स्वामीजी ने प्रवेश किया। वे प्रतिदिन देवी माँ के सामने होम करते एक मन दूध की खीर भोग देते, साधारण भक्त के समान बैठकर माला जपते और एक ब्राह्मण पंडित की छोटी बच्ची की उमा के रूप में पूजा करते। यवनों द्वारा खण्डित मंदिर के ध्वंसावशेषों को देखकर स्वामीजी कह उठे, ''किस प्रकार लोगों ने ऐसा अत्याचार चुपचाप सह लिया? प्रतिकार की थोड़ी-सी भी चेष्टा नहीं की। यदि मैं उस समय रहता, तो कदापि ऐसा नहीं होने देता, अपने प्राण देकर भी माँ की रक्षा करता।'' तभी स्वामीजी ने माँ के मन्दिर से देववाणी सुनी, ''यदि यवनों ने मेरा मन्दिर ध्वस्त कर प्रतिमा को अपवित्र कर भी दिया, तो इससे तेरा क्या? तू मेरी रक्षा करता है या मैं तेरी रक्षा करती हूँ।'' स्वामीजी ने इसे अपने मन का भ्रम जानकर उन्होंने भिक्षाटन से धन एकत्र कर पुनर्निर्माण का विचार किया। पर उसी क्षण उन्हें माँ की स्पष्ट वाणी सुनाई पड़ी। ''बेटा ! मैं यदि चाहूँ, तो असंख्य मन्दिरों और मठों की स्थापना कर सकती हूँ। इसी क्षण यहाँ एक विशाल सात मंजिल सुवर्ण मंदिर निर्मित हो सकता है।'' अब स्वामीजी समझ गए कि माँ की देववाणी सत्य है और इच्छामयी माँ की इच्छा से ही मंदिर की ऐसी अवस्था है। वे माँ की कृपानुभूति से अनिर्वचनीय आनन्दधारा में निमग्न हो गए। वे इसी अवस्था में ६ अक्टूबर को अपराह्न में श्रीनगर में अपनी टोली के पास लौट आए। उन्होंने वापस आकर कहा, ''अब और हरि ॐ नहीं, अब केवल माँ माँ। ...''अब मेरा स्वदेश प्रेम जा चुका है। अब मैं एक छोटा-सा शिशु मात्र हूँ।'' स्वामीजी के इस जीवन-रहस्य को समझने में उनकी शिष्याएँ असमर्थ थीं।

चार माह के दीर्घ प्रवास के बाद वे ११ अक्तूबर को बारामुला की ओर चल पड़े। स्वामीजी पूर्णत: अन्तर्मुखी रहते थे। वे शिष्यों से बात नहीं करते थे और उनके बजरे में प्रवेश भी नहीं करते थे। १८ अक्टूबर को वे लोग कलकत्ता लौट आये, किन्तु उनके भाव में कोई परिवर्तन नहीं आया। इस पर उनके गुरुभाई स्वामी ब्रह्मानन्द जी ने स्वामीजी के

शिष्य शरत् चन्द्र चक्रवर्ती से कहा, कश्मीर से आने के बाद स्वामीजी किसी से वार्तालाप नहीं करते, चुपचाप बैठे रहते हैं, तुम स्वामीजी के साथ हल्की-फुल्की बातें कर उनके मन को नीचे उतारने का प्रयास करो। शिष्य ने जब बात करना आरम्भ किया, तो स्वामीजी ने कहा, अमरनाथ दर्शन के बाद से ही चैबीसों घंटे शिवजी मानो मेरे मस्तक पर सवार रहते हैं, कैसे भी उतरते नहीं हैं। धीरे-धीरे उनकी स्थिति में सुधार हुआ और आगे ४ वर्ष तक वे पुन: कार्यक्षेत्र में उतर पड़े। यह केवल उनके लिये ही सम्भव था, उनके ही शब्दों में 'यदि कोई दूसरा विवेकानन्द होता, तो समझ पाता कि विवेकानन्द ने क्या किया है', इसीके साथ उनकी हिमालय यात्राओं का समापन हो जाता है।

अब वे मात्र १५ दिन के अन्तिम प्रवास में १९०१ में मायावती जाते हैं, जिसका वर्णन हम आगे करेंगे। हिमालय का आमंत्रण स्वामीजी के जीवन का अभिन्न अंग बन गया। मायावती यात्रा के साथ ही वे स्वयं हिमालय के प्रतिरूप बन गए।

हिमालय की बुलन्दियों में अद्वैत आश्रम

जीवन मे सर्वत्र द्वैतभाव के सहारे ही जीना होता है, उससे ऊपर उठना मानो दुर्भेद्य दीवार को तोड़ना है। किन्तु यदि उस दीवार को तोड़ने का द्वार खुल जाए, तो सारे अवरोध ढह जाते हैं। स्वयं जकड़े अज्ञानता के बन्धन ढीले हो जाते हैं, तब मुक्ति सारी अपूर्णता दूर कर हमें पूर्ण कर देती है। जीवन और जगत के प्रति दृष्टिकोण बदल जाता है। एक नया द्वार खुलता है, जो कह उठता है, तुमने भ्रम से स्वयं को दुर्बल, पराधीन समझा था, तुम स्वयं इसके उत्तरदायी हो। तब वह अपनी आँखों से हाथ हटा लेता है और अँधेरा भाग जाता है। न जाने कितने संघर्ष के बाद जीवन में यह नवल प्रभात आता है। बन्धनों के बीच चेतना का बीज अंकुरित होता है। इसी बीज के अंकुरण के लिए स्वामी विवेकानन्द ने हिमालय की बुलन्दियों में अद्वैत आश्रम की स्थापना की, जहाँ पुरुष-प्रकति का मिलन है, जहाँ साकार-निराकार का संगम है।

न जाने कितने तीखे सघन संघर्ष के बाद स्वामीजी ने यह अनुभव किया कि जीवन को जीवन के कारागार से मुक्ति दिलानी होगी। बिना आत्मचिन्तन, आत्मनिरीक्षण, ध्यान-धारणा तथा अन्तर्-बाह्य प्रकृति से संघष के बिना यह सम्भव नहीं है। भले ही जीवन में कर्तव्यों तथा जीने का प्रचण्ड संघर्ष है, किन्तु संघर्ष की इस ज्वाला में अपनी आत्मा को झुलसा देना ठीक नहीं है। मनुष्य में निहित अपार सम्भावनाओं को जगाना होगा। यह कार्य अद्वैत दर्शन की आदि-स्फुरण भूमि के निर्जन नीरवता में सम्भव है। आदि काल से ऋषि-मुनियों, चिन्तकों और कर्मवीरों की इस तपोभूमि में इसके बीज छिपें हैं, किन्तु उन्हें जगाना होगा, जो व्यक्ति को उसकी आत्मा के प्रति जागृत कर सकते हैं, जो निखिल विश्व को एकत्व, मनुष्यत्व और स्वाधीनता की शिक्षा दे सकते हैं। क्या इसीलिए स्वामीजी ने अद्वैत आश्रम की स्थापना की थी? इस प्रश्न के उत्तर में वे १८९९ में अद्वैत आश्रम को लिखते हैं –

"जहाँ कहीं भी भी प्रेम का विस्तार हुआ है अथवा व्यक्ति या समुदाय के कल्याण में वृद्धि हुई है, इस शाश्वत सत्य 'समस्त प्राणी का एकत्व' के ज्ञान, अनुभव और व्यवहार द्वारा ही हुई है। पराधीनता दैन्य है। स्वाधीनता ही सुख है। अद्वैत ही एकमात्र दर्शन है, जो मनुष्य को पूर्ण उपलब्धि कराता है, अपना स्वामी बना देता है। समस्त पराधीनता और उससे सम्बन्धित अन्धविश्वास को उतार फेंकता है और इस प्रकार हमें कष्ट झेलने में वीर बनाता है और अन्तत: परम मुक्ति प्राप्त करा देता है।"(विवकानन्द सा.)

पूर्व यात्रा-संस्मरणों से हम जानते हैं कि स्वामीजी हिमालय में अपना मठ स्थापित करना चाहते थे और इसके लिए उनके अंग्रेज-शिष्य सेवियर दम्पती प्रयासरत थे।

१८८८ ई. में जब स्वामीजी अल्मोड़ा से कश्मीर की ओर गये, तब श्रीसेवियर मठ हेतु भूमि के चयन में लग गये। उन्हें अलमोड़ा और उसके आसपास कहीं भी स्वामीजी की कल्पना के अनुरूप भूखण्ड नहीं मिला। अन्त में प्रभु की इच्छा से अल्मोड़ा नगर से ७० कि.मी. दूर लोहाघाट से १० कि.मी. की दूरी पर माईपट नामक स्थान को स्वामीजी के हिमालय मठ होने का सौभाग्य प्राप्त प्राप्त हुआ, जो अब चम्पावत जिले में स्थित है। यह स्थान भारतीय सेना के एक अवकाशप्राप्त जनरल मि. मैकग्रेगर का चाय बागान था। श्री सेवियर ने इस निर्जन वन-प्रान्त में कई भवनों सहित इस विशाल भूखण्ड को खरीदा। 'माईपट' नामक स्थान को भाग्योदय के साथ 'मायावती' नाम मिला, जो श्रीरामकृष्ण भक्तों के लिये एक पुण्यतीर्थ में परिणत हो जगद्विख्यात हो गया। १९ मार्च, १८९९ ई. को श्रीरामकृष्ण देव के जन्म दिवस के पावन अवसर पर यहाँ 'अद्वैत आश्रम' नामक आश्रम की स्थापना हुई। स्वामीजी का हिमालय मठ का स्वप्न साकार हुआ। इस मठ के बारे में स्वामीजी ने कहा था, "यह अद्वैत केवल अद्वैत के लिए समर्पित है।"

स्वामी विवेकानन्द की अन्तिम उत्तराखण्ड यात्रा

हिमालय की गोद में स्वामीजी का अन्तिम प्रवास जनवरी

१९०१ में मात्र १५ दिन का रहा। वह भी अपने प्रथम हिमालय मठ मायावती में, जिसकी स्थापना में प्राणपण प्रयत्न करते हुए उनके प्रिय श्री सेवियर ने २८ अक्तूबर, १९०० को इसी आश्रम में अपने प्राण त्याग दिये।

उस समय स्वामीजी अपनी दूसरी विदेश यात्रा में यूरोप आदि के दौरे पर थे। उन्होंने इस घटना का पूर्वाभास पा लिया था, इसलिये वे अचानक भारत के लिये चल पड़े। दिसम्बर, १९०० में वे बिना पूर्व सूचना के बेलूड़ मठ पहुँचे। उन्हें श्री सेवियर के शरीर-त्याग की सूचना मिली।

स्वामीजी ने श्रीमती सेवियर को सान्त्वना देने हेतु मायावती जाने का निर्णय लिया। किन्तु वे स्वयं अस्वस्थ थे। उस पर भी इस समय पहाड़ पर सर्दी का मौसम और हिमपात की आशंका थी। किन्तु अपने आत्मबल के सहारे वे अपने गुरुभाई शिवानन्द और शिष्य स्वामी सदानन्द के साथ २६ दिसम्बर को बेलूड़ से चलकर ३ जनवरी, १९०१ को मायावती आश्रम पहुँचे। मार्ग में हिमपात और वर्षा से उन्हें बहुत कष्ट हुआ। ३ जनवरी को हिमालय की इस देवभूमि को स्वामीजी ने अपने चरणरज से पवित्र किया। उनके स्वागत के लिये आश्रम को पत्र-पुष्पों से सजाया गया था। लाला बद्रीशाह के भानजे श्री मोहनलाल शाह उस समय आश्रम में रह रहे थे। वे अपने संस्मरणों में स्वामीजी के आगमन और व्यक्तित्व का जीवन्त वर्णन करते हैं –

''ठीक बारह बजे का समय था, आश्रम में भोजन का घण्टा बज रहा था। उसी समय स्वामीजी ने मायावती में पदार्पण किया। मैं आनन्दपूर्वक दौड़ कर गया और बन्दूक से दो गोलियाँ दागी। दो दिन स्वामीजी आश्रम भवन के ऊपर के कमरे में रहे, परन्तु उसके बाद इतना भयंकर हिमपात होने लगा कि उस ठण्डक के दौरान उन्हें ऊपर के कमरे में नहीं रखा जा सका। वहाँ आग जलाने की व्यवस्था नहीं थी। इसलिए नीचे के बरामदे में रहने लगे, उसमें आग जलाने की व्यवस्था थी और सारे समय आग जलती रहती थी।''

श्री शाहजी स्वामीजी के व्यक्तित्व का वर्णन करते हुए लिखते हैं, ''अल्मोड़े में एक बार बद्रीशाह के मकान पर उन्हें देखा था, मानो साक्षात् बुद्धदेव हों। मायावती में एक दूसरा ही भाव दिख पड़ा। टहलते समय उनके शरीर पर गरम लम्बा कोट रहता था। उनका स्वास्थ्य उस समय ठीक न था। डील-डौल पहले की अपेक्षा खराब हो गया था परन्तु उनके नेत्र क्या ही अद्भुत थे ! कोई साधारण व्यक्ति उन नेत्रों की ओर देख ही नहीं पाता था। जब टहलते तो सिंह के समान। देख कर हृदय भर जाता था। प्राण शीतल हो जाते थे।''

मायावती के बर्फीले मौसम में स्वामीजी को अधिकांश समय बन्द कमरे में बिताना पड़ा। उन्होंने पठन-पाठन और लेखन में समय का सदुपयोग किया। तीन लेख लिखे, जो प्रबुद्ध भारत में प्रकाशित हुए। इन लेखों में उनके ऋषित्व, प्रखर मेधाशक्ति, विद्वत्ता और कोमल हृदय का अपूर्व संगम देखने को मिलता है। १८ जनवरी १९०१ ई. को स्वामीजी ने मायावती से विदाई ली, उनकी अन्तिम उत्तराखण्ड की यात्रा का समापन हो गया। इस समय १३ जनवरी को वे अपने जीवन के ३८ वर्ष पूर्ण कर चुके थे। शारीरिक रूप से भले ही वे उत्तराखण्ड हिमालय से विदा हो गये हों, किन्तु आत्मिक रूप से वे सदा-सदा के लिये बने हुए हैं। हिमालय के इस नयनाभिराम, तपोमय, ज्ञान-वैराग्य के प्रतीक, शिव-गौरी की लीलाभूमि के वे अभिन्न अंग बन गये । अबकी बार सचमुच वे पंख लगाकर हिमालय की गोद में आये थे, शरीर तो मात्र अवलम्बन था। उनके मन, प्राण तो यहीं के हो गये थे। इसी प्रवास में उन्होंने कहा था, ''अपने जीवन के अन्तिम भाग में मैं समस्त जनहित कार्यों को छोड़कर यहाँ आऊँगा और ग्रन्थ-रचना तथा संगीत में अपना समय बिताऊँगा।''

निश्चय ही वे आज भी हिमालय में निवास कर रहे हैं। इसके कण-कण में उनका वास है। इसकी स्फूर्तिदायी वायु में उनका अहसास है। तभी तो यह देवभूमि आत्मप्रेमियों, तपस्वियों, कवियों, प्रकृतिप्रेमियों को सदा आकर्षित करती जा रही है। ऐसा क्यों न हो? क्योंकि इसका कण-कण ब्रह्मर्षि के पावन स्पर्श की ऊर्जा से ओत-प्रोत है। दो की सत्ता जहाँ समाप्त हो जाये, वहाँ विदाई का प्रश्न कैसे उदित हो सकता है? हिमालय की गोद में स्वामीजी को सब कुछ मिल गया। उनके जीवन से कभी भी हिमालय को पृथक नहीं किया जा सकता, जहाँ उन्होंने कुल मिलाकर एक वर्ष दो माह का बहुमूल्य समय बिताया।

हिमालय कि गोद में आकर वे सदा के लिए हिमालय के प्रतिरूप हो गये। यही तो उन्होंने चाहा था और कहा था, ''इसी दिव्य स्थान में पहाड़ों की चोटियों पर, इनकी गुफाओं में तथा इनके कल-कल बहनेवाले झरनों के तट पर महर्षियों ने अनेकानेक गूढ़ भावों तथा विचारों को सोच निकाला है, उनका मनन किया है। उन विचारों का केवल एक अंश ही इतना महान है कि उस पर विदेशी तक मुग्ध हैं। ...मैं प्रार्थना करता हूँ और विश्वास भी करता हूँ कि संसार के सब स्थानों को छोड़ मेरे जीवन के अन्तिम दिन यहीं व्यतीत होंगे।''(वि. सा. ५२/२४३)'' **(समाप्त)**

बीती बातें बीते पल

मैंने ईश्वर-सदृश व्यक्ति को देखा है

स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के तेरहवें संघाध्यक्ष थे। एक आदर्श संन्यासी होने के साथ-साथ वे एक प्रखर वक्ता भी थे। उनके व्याख्यान अधिकतर स्वामी विवेकानन्द के जीवन और सन्देश से ओतप्रोत रहते थे। अपने व्याख्यानों में वे मनुष्य में दिव्यत्व, नर-नारायण की सेवा आदि विषयों पर प्रकाश डालते थे।

लौकिक व्यवहार में हम जिसे जाति-पद आदि के आधार पर सामान्य व्यक्ति समझते हैं, उनके अन्दर वे उसी दिव्यता को देखते थे, जिससे वे स्वयं परिपूर्ण थे। उनके मृदुल और सम्मानपूर्वक व्यवहार से दूसरे लोग भी अपने अन्दर एक दिव्यता का आभास पाते थे।

बात १९७० की है। एक बार सरकारी सेवा से अवकाश-प्राप्त एक वृद्ध सज्जन स्वामी रंगनाथानन्द महाराज से मिलने एक आश्रम में आए। वहाँ उपस्थित एक साधु से उन्होंने महाराज के बारे में पूछा। वे सज्जन बहुत ही विनम्र थे और महाराज के विषय में बात करते समय उनके हृदय की भावनाएँ उमड़ रही थीं। बहुत पूछने पर उन्होंने महाराज के बारे में इस प्रकार बताया –

मैं एक पोस्टमेन था। १९६० में जब स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज इस आश्रम के सचिव थे, तब मैं यहाँ डाक देने आया करता था। उस समय मुझे अनेक स्थानों पर डाक देनी पड़ती थी। ग्रीष्म ऋतु में अत्यधिक गरमी पड़ती थी। पसीने से लथपथ होकर, हाथों में डाक लिए मैं यहाँ आता था। जब भी स्वामी रंगनाथानन्द जी महाराज आश्रम में होते, वे सर्वप्रथम मुझे बड़े स्नेहपूर्वक ऑफिस में बुलाते थे। पंखे का बटन चालू कर मुझे पंखे के नीचे बैठने के लिए कहते। इसके बाद वे रसोईघर से किसी को मेरे लिए लस्सी लाने को कहते। वे देखते कि मैंने लस्सी पी है कि नहीं। इसके बाद वे कहते, "लस्सी पीने के बाद कुछ समय पंखे के नीचे बैठो और फिर अपना काम शुरू करो।" कभी-कभी तो मैं उन्हें 'धन्यवाद' भी नहीं कहता था। किन्तु मुझे सदैव उनसे जो स्नेह, प्रेम और कृपा प्राप्त हुई, वह मुझे अपने परिवार के सदस्यों से भी कभी प्राप्त नहीं हुई। जैसे-जैसे दिन बीतते जा रहे हैं और मैं बूढ़ा होता जा रहा हूँ, मैं यह अवश्य कह सकता हूँ, "भले ही मैंने ईश्वर को नहीं देखा, किन्तु मैंने उनके समान ईश्वर-सदृश व्यक्ति को देखा है।" ऐसा कहते समय उनके कपोल से एक अश्रु-बिन्दु टपक पड़ा। ○○○

मानव-वाटिका के सुरभित पुष्प

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

२९७. आजादी के दीवाने, गीत क्रान्ति के गाए जा

एक बार भगत सिंह, विजय कुमार सिन्हा और भगवान दास माहौर किसी विषय पर वार्तालाप कर रहे थे कि मन की धुन में आकर भगवान दास गुनगुनाने लगे – हृदय लागी प्रेम की बात निराली, मन्मथ शर ----। इतने में चन्द्रशेखर वहाँ आ पहुँचे। उन्होंने जब गीत की यह पंक्ति सुनी, तो नाराज होकर भगवानदास से कहा, क्या प्रेम-प्रेम की रट लगा रहा है। प्रेम को भूल जा, कल अगर सड़क पर पुलिस से सामना हुआ, तो उसकी गोली से ढेर हो जाएगा, तब मन्मथशर (कामदेव का बाण) भी तुझे बचा नहीं सकेगा। प्रेम के गीत गाना छोड़कर आज़ादी के इस प्रकार के तराने गा –आज़ाद ही रहे हैं, आज़ाद ही रहेंगे।" भगवान दास को पश्चाताप हुआ। उसने माफी माँगते हुए कहा – मैं क्षण भर के लिये अपने लक्ष्य को भूल गया था। फिरंगियों को देश से खदेड़ने के लिए हमें मन में दूसरे विचार नहीं आने देने चाहिए। स्वयं निरुत्साहित न होकर दूसरों में जोश पैदा करने के लिए तत्पर होना चाहिए।"

सच्चे देशभक्त के हृदय में राष्ट्र प्रेम की भावना सागर में उठने वाली उत्तुंग तरंगों की भाँति रह-रहकर हिलोरें लेती रहती हैं। देश के लिये प्राणों का बलिदान करने के लिए उद्यत वीर पुरुष दृढ़ निश्चयी होते हैं। व्यक्तिगत महत्त्वाकांक्षाओं को तिलांजलि देकर देश की रक्षा के लिये वे सर पर कफन बाँधकर सड़क पर निकल पड़ते हैं। सरफरोशी की तमन्ना मन में संजोए उनके मुख से देशभक्तिपरक गीत की कड़ियाँ निकल पड़ती हैं, जो उनके उत्साह को बढ़ाने का काम करती हैं। वे अपने चित्त को दूसरी ओर नहीं मोड़ते। ○○○

भारत की आत्मा : विवेकानन्द

प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी

(भारत के प्रधानमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी जी ने यह ऐतिहासिक व्याख्यान रामकृष्ण मिशन, मलेशिया (कुआलालांपुर) में १२ फिट की स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति के अनावरण महोत्सव के अवसर पर दिया था। प्रस्तुत है उसका सम्पादित अंश)

भाइयो और बहनो !

अभी सुप्रियानन्द जी कह रहे थे कि हमने इस परिसर में तो विवेकानन्दजी की प्रतिमा स्थापित की, पर हम अपने मन-मन्दिर में, अपने हृदय में विवेकानन्दजी को स्थापित करें। मैं एक बात आपको आपको कहूँ। मैं नहीं मानता हूँ कि मेरे कहने से हमारे भीतर विवेकानन्द प्रवेश कर सकते हैं और न ही किसी के प्रवचन से विवेकानन्दजी हमारे भीतर प्रवेश कर सकते हैं। विवेकानन्द, यह न किसी व्यक्ति का नाम है, न ही किसी व्यवस्था की पहचान है, एक प्रकार से विवेकानन्द सहस्त्रों साल पुरानी भारत की आत्मा की पहचान है।

वेद से विवेकानन्द तक हमारी एक लम्बी सांस्कृतिक विरासत है। उपनिषद से लेकर उपग्रह तक हमने अपनी आर्थिक, सामाजिक, वैज्ञानिक विकास यात्रा को भी समर्थ किया है। उपनिषद से आरम्भ कर उपग्रह तक हम पहुँचे, लेकिन सच्चे अर्थ में जो हमारी मूल पहचान है, जो हमारी आत्मा है, उसको अगर हम बरकरार रखते हैं, तो उसका अर्थ यह हुआ कि मैं अपने भीतर स्वामी विवेकानन्दजी को जीवित रखने की कोशिश कर रहा हूँ। रामकृष्ण परमहंस और नरेन्द्र, इन दोनों के बीच की दुनिया को अगर हम समझ लें, तो शायद विवेकानन्द जी को समझने में हमें सुविधा होगी। नरेन्द्र कभी गुरु की खोज में नहीं निकले थे, न ही उन्हें गुरु की तलाश थी, नरेन्द्र सत्य की तलाश कर रहा था। ईश्वर है कि नहीं ! उसके मन में एक आशंका थी कि परमात्मा नाम की कोई चीज नहीं हो सकती है। ईश्वर नाम का कोई व्यक्ति नहीं हो सकता है और वे उस सत्य को जानने के लिए जूझ रहे थे।

और न ही रामकृष्ण परमहंस किसी शिष्य की तलाश में थे। मैं एक आश्रम स्थापित करूँ और उसको कोई चलाता रहे, रामकृष्ण देव के मन में ऐसे किसी शिष्य की तलाश नहीं थी, ऐसी कोई मनीषा नहीं थी। एक गुरु जिसको शिष्यों की खोज नहीं थी। एक शिष्य जिसको गुरु की खोज नहीं थी। लेकिन कमाल देखिए, एक सत्य को समर्पित था और दूसरा सत्य को खोजना चाहता था। उसी सत्य की तलाश ने दोनों को जोड़ के रख दिया। यह अगर हम समझ लें, तो फिर सत्य की तलाश क्या हो सकती है, सत्य के रास्ते पर चलना कितना कठिन हो सकता है और उसमें भी कैसे सिद्धि प्राप्त की जा सकती है, वह विवेकानन्दजी के जीवन से हम जान सकते हैं।

हम विवेकानन्द जी के उस कालखंड का विचार करें, जहाँ पर धर्म का प्रभाव, पूजा-पद्धति की विधि का प्रभाव, कर्मकाण्ड का माहात्म्य, धर्म-गुरुओं का माहात्म्य, धर्मग्रंथों का माहात्म्य चरम सीमा पर था। उस समय एक नौजवान उन सारी परम्पराओं से भाग जाने की बात करे, इसकी आज कोई कल्पना तक नहीं कर सकता है।

एक बहुत बड़ा वर्ग यह मानता था कि भगवान के पास घंटों तक बैठे रहें, पूजा-पाठ करते रहें, आरती-धूप करते रहें, फूल चढ़ाते रहें, नए-नए प्रसाद चढ़ाते रहें, तो जीवन के पाप धुल जाते हैं, मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है और चरम सीमा का आनन्द प्राप्त करने का अवसर मिल जाता है। तब ऐसी सोच बनी हुई थी। उस समय विवेकानन्द डंके की चोट पर कहते थे, जन-सेवा है प्रभु-सेवा। सामान्य मानव जो आपके सामने जीवित है, जो दुख और दर्द से पीड़ित

है, उसकी सेवा करो, ईश्वर अपने आप प्राप्त हो जायेगा।

उस समय हम गुलामी के कालखंड में जी रहे थे, कोई सोच भी नहीं सकता था, भारत कभी आजाद हो सकेगा। लेकिन स्वामी विवेकानन्द भविष्यद्रष्टा थे। उन्होंने अपने जीवन-काल में कहा था, मैं आँखों के सामने देख रहा हूँ कि मेरी भारत माँ उठ खड़ी हुई है, वह जगतगुरु के स्थान पर विराजमान है। मैं एक जीवन्त भारत माता देख रहा हूँ। वह दिन बहुत निकट होगा। स्वामी विवेकानन्द जी ने इसे अपने जीवन-काल में अपनी आँखों से देखा था। वे हिन्दुस्तान को प्रेरित करने का प्रयास करते थे।

वह एक कालखंड था, जब अध्यात्म-प्रधान जीवन था, वह केवल भारत में ही नहीं, बल्कि एशिया के सभी देशों में समाहित था और दूसरी ओर पश्चिम का विचार था, जो अर्थ-प्रधान था। अध्यात्म-प्रधान जीवन और अर्थ-प्रधान जीवन के बीच शताब्दियों का टकराव चल रहा था। अर्थ-प्रधान जीवन ने अध्यात्म-प्रधान जीवन को किनारे कर दिया था। अर्थ-प्रधान जीवन जनसामान्य की आशा, आकांक्षाओं का केन्द्र-बिन्दु बन गया था। ऐसे कालखंड में स्वामी विवेकानन्द ने ३०-३२ साल की आयु में पश्चिम की धरती पर जाकर विश्व को आध्यात्मिकता का संदेश देने का एक साहसिक कार्य किया था। उस महापुरुष ने एशिया की आध्यात्मिक शक्ति से विश्व को परिचित कराया। पहली बार विश्व को ज्ञात हुआ कि एशिया की अपनी धरती की एक अलग चिन्तनधारा है, यहाँ के संस्कार अलग हैं और विश्व को देने के लिये उसके पास बहुत कुछ है। ये बात डंके की चोट पर कहने का साहस स्वामी विवेकानन्द ने किया था।

कल मैं यहाँ Asian Summit में था। आज यहाँ मैं दक्षिण-पूर्व एशिया समारोह (South East Asia Summit)) में था और एक बात वहाँ उभरकर के सामने आई, वह थी – 'एक एशिया' (One Asia) का विचार।

लेकिन आज जो आवाज गूँज रही है, उसमें आर्थिक व्यवस्था है, राजनीतिक व्यवस्था है, सरकारों के मेलजोल की व्यवस्था का चिन्तन है, लेकिन बहुत कम लोगों को मालूम होगा कि 'एक एशिया' (One Asia) की संकल्पना आध्यात्मिक धरातल पर सबसे पहले स्वामी विवेकानन्द ने प्रचारित की थी। मैं एक पुरानी घटना आपके सामने प्रस्तुत करना चाहता हूँ।

स्वामी विवेकानन्द जी ने प्राच्य, एशिया और पाश्चात्य को सम्बोधित किया। विद्वानों और दार्शनिकों जैसे – जापान के ओकाकुरा और कैरियो, रवीन्द्रनाथ टैगोर, महर्षि अरविन्द, आनन्दकुमार स्वामी और विनय सरकार ने स्वामी विवेकानन्द से प्रेरणा प्राप्त की थी। ओकाकुरा ने स्वामी विवेकानन्द जी को जापान में आमन्त्रित किया और ३००/- रूपये का चेक भी भेजा। उन्होंने १ फरवरी, १९०२ को कोलकाता में आकर स्वामी विवेकानन्द जी से भेंट की और दोनों बोधगया गए। ओकाकुरा एशियाई एकता के प्रतीक थे। वे अपनी पुस्तक 'Ideals of the East', जिसका सम्पादन स्वामी विवेकानन्द की प्रमुख पाश्चात्य शिष्या भगिनी निवेदिता ने किया है, उसमें वे लिखते हैं – "एशिया एक है।" एशियाई एकता की धारणा स्पष्टत: स्वामी विवेकानन्द की है। अपनी दूसरी पुस्तक को ओकाकुरा ने 'एशिया के भाइयो और बहनो' से आरम्भ किया, जो स्वामी विवेकानन्द जी के द्वारा सर्वधर्म सभा में दिए गये व्याख्यान की प्रतिध्वनि थी।

मैं यह इसलिये कह रहा था कि उस समय इस प्रकार के जो दार्शनिक थे, वे विवेकानन्दजी से प्रभावित थे। उन लोगों ने विवेकानन्द जी से 'Asia is One' – 'एशिया एक है' का मन्त्र पाया था। आज १०० साल के बाद आर्थिक, राजनीतिक कारणों से 'एक एशिया' की चर्चा हो रही है। लेकिन उस समय आध्यात्मिक एकात्मता के आधार पर विवेकानन्दजी ये देख पाते थे कि यही भूमि है, जो विश्व को संकटों से बाहर निकाल सकती है। आज जगत जिन दो संकटों से जूझ रहा है, उन संकटों का समाधान एशिया की धरती से ही निकल सकता है। इसलिए आज विश्व क्लाइमेट चेंज (Climate Change) और ग्लोबल वार्मिंग (Globel warming) की बात कह रहा है। आज विश्व कर रहा है आतंकवाद (Terrorism) की चर्चा। यही धरती है, जहाँ भगवान बुद्ध का संदेश मिला, यही धरती है, जहाँ हिन्दुत्व का संदेश मिला और इसी धरती से ये बातें उभर करके आ गई हैं, जहाँ पर यह कहा गया – **एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्ति** (सत्य एक है, किन्तु ज्ञानी इसे अनेक प्रकार से कहते हैं।) यह जो मूल मंत्र है, वह सबको एक रखने, जोड़ने की शक्ति देता है। आतंकवाद में पवित्र जीवन की कल्पना ही नहीं है। जबकि भारत में हर सत्य को स्वीकार किया जाता है। जब हर सत्य को स्वीकार किया जाता है,

तब संघर्ष के लिए अवकाश ही नहीं होता है। जब संघर्ष के लिए अवकाश नहीं है, तो संघर्ष की संभावना नहीं है। जहाँ संघर्ष नहीं है, वहाँ आंतकवाद के रास्ते पर जाने का कोई कारण नहीं बनता है।

आज विश्व ग्लोबल वार्मिंग की चर्चा करता है। हम वे लोग हैं, जिसने पौधे में परमात्मा को देखा था। हमने जितनी भी ईश्वर की कल्पना की है, हर ईश्वर के साथ कोई-न-कोई प्राकृतिक जीवन जुड़ा हुआ है। किसी-न-किसी वृक्ष के साथ उन्होंने साधना की है, किसी-न-किसी पशु-पक्षी का उन्होंने पालन किया है। ये सहज संदेश हमारी परम्परा में रहा हुआ है। हम प्रकृति के शोषण के पक्षधर नहीं रहे हैं। हम प्रकृति के साथ मित्रतापूर्ण जीवन बिताने की शिक्षा लेकर चलने वाले लोग हैं। यही संस्कृति है, जो ग्लोबल वार्मिंग से मानवजाति को बचा सकती है। मुझे लगता है कि स्वामी विवेकानन्द जी ने हमें जो मार्ग दिखाया है, यदि हम उन पर चलते हैं, तो हमें अपने भीतर कोई नए विवेकानन्द को स्थापित करने की जरूरत नहीं है। उनकी कही हुई एक बात को लेकर भी यदि हम चल पाते हैं, तो मैं समझता हूँ कि आनेवाली शताब्दियों तक मानवजाति की सेवा करने के लिये कुछ-न-कुछ योगदान करके जा सकते हैं।

आज मुझे यहाँ एक योग की पुस्तक का भी लोकापर्ण करने का अवसर मिला है। हमारी सरकार के साथ ही श्रीमान शाहू ने यहाँ की भाषा में योग की पुस्तक की रचना की है। वे स्वंय सरकारी अधिकारी हैं, लेकिन योग के प्रति उनका समर्पण है। मुझे उनकी उस किताब का लोकार्पण करते हुए खुशी हुई। आज विश्व योग के प्रति आकर्षित हुआ है। हर कोई तनावमुक्त जीवन का रास्ता खोज रहा है। लगता है उसकी खिड़की योग से खुलती है, इसलिए हर कोई उस खिड़की में झाँकने की कोशिश करता है।

संयुक्त राष्ट्र ने अन्तर्राष्ट्रीय योग दिवस के रूप में २१ जून को स्वीकार किया। दुनिया के १७७ देशों ने उसको समर्थन दिया और दुनिया के सभी देशों ने २१ जून को योग का दिवस मनाया। मानवजाति अपने मानसिक समाधान का रास्ता तलाश रही है। सम्पूर्ण स्वास्थ्य सुरक्षा (Holistic health care) की तरफ आगे बढ़ रही है। तब उसको लगा कि योग एक ऐसी सरल विद्या है, जिसको अगर हम दिन के आधा-पौना घंटा भी कर लें, तो हम अपने मन, बुद्धि शरीर को एक दिशा में चला सकते हैं। आज हमारे लिए यह चुनौती नहीं है कि हम दुनिया को समझाएँ कि योग क्या है? हमारे समाने चुनौती यह है कि सारा विश्व अच्छे योग के शिक्षकों की माँग कर रहा है। हमारे लिए सबसे बड़ी चुनौती है कि हम दक्ष योग-शिक्षक कैसे दें, ताकि इस विद्या का सही स्वरूप आनेवाली पीढ़ियों तक पहुँचे, सचमुच लोग इसका लाभ उठाएँ। उनका जो भी उद्देश्य हो, उसे पूरा करने में लाभ मिल सके। इसलिए अधिक-से-अधिक आधुनिक भाषा में हम योग को प्रचारित करें, अधिक-से-अधिक योग को आधुनिक भाषा में प्रतिपादित करें, स्वयं योग के जीवन को जीकर दुनिया के सामने प्रस्तुत करें और अधिकतम योग के शिक्षक तैयार करें, जिनकी इसमें रुचि हो। वे भले ही व्यवसाय न करें। दिन में हम ५० काम करते हैं, एक घंटे योग के लिये जो भी सीखने आएगा, हम सिखाएँगे।

यदि ये सब हम एशिया के वायुमंडल में लाते हैं, तो विश्व की जो अपेक्षा है, उस अपेक्षा को पूर्ण करने के लिये उत्तम योग-शिक्षक हम दुनिया को दे सकते हैं।

मैं स्वामी सुप्रियानन्द जी का बहुत आभारी हूँ कि आज मुझे इस पवित्र स्थान पर आने का अवसर मिला। विवेकानन्दजी की प्रतिमा का लोकार्पण करने का अवसर मिला। मुझे विश्वास है कि इस धरती पर आनेवाले विश्व के सभी लोगों को यहाँ से कोई प्रेरणा मिलती रहेगी। इसी शुभकामना के साथ आप लोगों का बहुत-बहुत धन्यवाद।

OOO

संसार में इस तरह रहो जैसे बड़े लोगों के घर की दासी । सब काम करती है, बाबू के बच्चे की सेवा करके उसे बड़ा कर देती है, उसका नाम लेकर कहती है, यह मेरा हरि है । परन्तु मन-ही-मन खूब जानती है कि न यह घर मेरा है और न यह लड़का । वह सब काम तो करती है, परन्तु उसका मन उसके देश में लगा रहता है । उसी तरह संसार का सब काम करो, परन्तु मन ईश्वर पर रखो और समझो घर, परिवार, पुत्र सब ईश्वर के हैं । मेरा यहाँ कुछ भी नहीं है । मैं केवल उनका दास हूँ ।

— श्रीरामकृष्ण परमहंस

आध्यात्मिक जिज्ञासा (८)

स्वामी भूतेशानन्द

(ईश्वरप्राप्ति के लिये साधक साधना करते हैं, किन्तु ऐसी बहुत सी बातें हैं, जो साधक की साधना में बाधा बनकर उपस्थित होती हैं। साधक के मन में बहुत से संशयों का उद्भव होता है और वे संशय उसे लक्ष्य पथ में भ्रान्ति उत्पन्न कर अभीष्ट पथ में अग्रसर होने से रोकते हैं। इन सबका सटीक और सरल समाधान रामकृष्ण संघ के द्वादश संघाध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी भूतेशानन्द जी महाराज ने दिया है। इसका संकलन स्वामी ऋतानन्द जी ने किया है, जिसे हम 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु प्रकाशित कर रहे हैं। – सं.)

तभी तो उपनिषद कह रहे हैं – **यत्र हि द्वैतमिव भवति तदितर इतरं पश्यति तदितर इतरं जिघ्रति तदितर इतरं रसयते तदितर इतरं अभिवदति तदितर इतरं शृणोति तदितर इतरं मनुते तदितर इतरं स्पृशति तदितर इतरं विजानाति यत्र त्वस्य सर्वमात्मैवाभूत् तत् केन कं पश्येत् तत् केन कं जिघ्रेत् तत केन कं रसयेत् तत केन कमभिवदेत् तत् केन कं शृणुयात् तत् केन कं मन्वीत तत् केन कं स्पृशेत् तत् केन कं विजानीयाद् येनेदं सर्वं विजानाति तं केन विजानीयात् स एष नेति नेत्यात्मागृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि शीर्यतेऽसङ्गो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रिष्यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादिति।''(बृहदारण्यकोपनिषद ४/५/१५)**

अर्थात् – ''क्योंकि जब (ब्रह्म) द्वैत-सदृश रहता है, तब एक दूसरे को देखता है, एक दूसरे को सूँघता है, एक दूसरे का रसास्वादन करता है, एक-दूसरे को कहता है, एक दूसरे की सुनता है, एक दूसरे का चिन्तन-मनन करता है, एक दूसरे का स्पर्श करता है, एक दूसरे को विशेषरूप से जानता है। किन्तु जब सब कुछ इसकी आत्मा ही हो गया, तब किससे किसको देखेगा, किससे किसको सूँघेगा, किससे किसका रसास्वादन करेगा, किससे किसको कहेगा, किससे किसकी सुनेगा, किससे किसका चिन्तन-मनन करेगा, किससे, किसका स्पर्श करेगा, किससे किसको जानेगा? जिससे लोग इन सभी चीजों को जानते हैं, उसे किसके द्वारा जानोगे? जिसे 'नेति नेति' कहा गया है, वही यह आत्मा है। यह अग्राह्य है, क्योंकि इसका ग्रहण नहीं किया जा सकता। यह अक्षय है, क्योंकि इसका विनाश नहीं होता, यह असंग है, क्योंकि इसकी आसक्ति नहीं है, यह अबद्ध है, इसलिये यह दुखित और विनष्ट नहीं होता। जो सबका ज्ञाता है, उस विज्ञाता को किससे जानें?'' जब तुम लोग जप-ध्यान करते हो, तब क्या ''मैं ब्रह्म हूँ'' चिन्तन करते हो?

– संन्यासी तो आत्मचिन्तन ही करेगा।

महाराज – आत्मचिन्तन कोई नहीं करता, व्यर्थ-चिन्तन करता है।

– साधु ब्रह्म-चिन्तन ही तो करेगा, और क्या करेगा?

महाराज – जिस वस्तु को ग्रहण नहीं कर सकते, उसका चिन्तन कैसे करोगे? पहले आत्मचिन्तन करो। पहले देखो – मैं कौन हूँ? तभी तो ब्रह्म-चिन्तन होगा – मैं ब्रह्म हूँ। केवल ब्रह्म-चिन्तन का क्या अर्थ है? क्या ब्रह्म को ग्रहण कर सकोगे? जिसके बारे में कहा गया है – **यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम्।।** ऐसे ब्रह्म का चिन्तन कैसे करोगे?

– किन्तु यह भी कहा गया है – ''मनसा एव अनुपश्यन्त।''

महाराज – वह तो है, जब मनुष्य शुद्ध होगा, तब 'वे यहाँ हैं', 'वे यहाँ हैं', विचार नहीं करना होगा। विचार बंद हो जायेग। तब जो है, वही अद्वैत है, केवल अनुभव होता है।

प्रश्न – महाराज ! पहले एक प्रश्न के उत्तर में आपने कहा था, हमारा अस्तित्व क्या है, उसका विचार कर देखते-देखते सब कुछ शून्य हो जाता है। अस्तित्व खोजने जाने पर कुछ नहीं मिलता। यही हमारा स्वरूप है। तो अभी प्रश्न है कि यदि कुछ नहीं पाया जाय महाराज, तो क्या इसका अर्थ है कि ब्रह्म शून्य है?

महाराज – शून्य, अच्छी एक व्याख्या हुई। वैसा नहीं है। वे शब्दातीत हैं।

– यह तो महाराज, आप केवल श्रुति, वेद की बात कह रहे हैं। किन्तु यह क्या है, कौन है? अर्थात् यह शब्दातीत

वस्तु है, इसे युक्तिसंगत रूप से कैसे कहा जा सकता?

महाराज – यहाँ युक्ति कार्य नहीं करती। यही कठिनाई है। जहाँ जो वस्तु कार्य नहीं करती, उसका वहाँ प्रयोग करके क्या होगा?

– अच्छी बात है। तो हम लोग कहेंगे, ब्रह्म सिद्ध वस्तु है। सिद्धान्ती कहते हैं – यह भी सिद्धान्ती को कहना ठीक नहीं है।

महाराज – सिद्धान्त नहीं। स्वयंसिद्ध है।

– महाराज, यदि किसी स्वयंसिद्ध वस्तु को कोई उसे पुन: सिद्ध करना चाहे, तो नहीं होता।

महाराज – सर्वसिद्धि। सर्व, वे जो सभी संदेहों के अतीत हैं। इसीलिए उनके प्रमाण की कोई आवश्यकता नहीं है। वे सर्व संशयातीत हैं। तुम्हारे अपने सम्बन्ध में तुम्हें कोई संशय है कि तुम हो कि नहीं?

– संशय है महाराज।

महाराज – क्या संशय है? ये कैसी बात है?

– संशय कैसा है बता रहा हूँ। संशय है – मैं शरीर हूँ, या मन हूँ, या अन्य कुछ हूँ?

महाराज – ये तो तुम्हारे स्वरूप के सम्बन्ध में है। किन्तु तुम हो कि नहीं, यदि यह संशय करो, तो कौन विचार करेगा? आज इतना ही। इस सम्बन्ध में बाद में चर्चा की जायेगी।

प्रश्न – महाराज ! गुरु कौन हैं?

महाराज – गुरु गीता में 'गुरु' शब्द की व्याख्या इस प्रकार लिखी हुई है –

गुशब्दश्चान्धकारः स्याद्रुशब्दस्तन्निरोधकः ।

अन्धकारनिरोधित्वात् गुरुरित्यभिधीयते ।।(श्लोक- २०)

– 'गु' शब्द का अर्थ अन्धकार है और 'रु' का शब्दार्थ है, निरोध या नाश करनेवाला। अन्धकार या अज्ञान का जो नाश करते हैं, उन्हें 'गुरु' कहते हैं। गुरुस्तोत्र में है –

अज्ञानतिमिरान्धस्य ज्ञानांजनशलाकया ।

चक्षुरुन्मीलितं येन तस्मै श्रीगुरवे नमः ।।(श्लोक-३)

अज्ञानान्धकाराछन्न व्यक्ति के चक्षु को ज्ञानरूपी शलाका के द्वारा जो उन्मीलित करते हैं, खोल देते हैं, वे गुरु हैं।

प्रश्न – सद्गुरू का क्या लक्षण है महाराज?

महाराज – सद्गुरू की कोई आंकाक्षा, किसी विषय की कामना नहीं रहेगी। गुरु यदि शिष्य बनाकर उसके साथ व्यापार करे, तो यह ठीक नहीं है। गुरु यदि सद्गुरु होंगे, तो उनके सान्निध्य में जाने से मन शुद्ध होगा।

वे ही गुरु हैं, जो स्वयं जिस मार्ग पर चलेंगे, शिष्य को भी वही मार्ग बतायेंगे। उसी मार्ग पर चलने से शिष्य शेष जीवन व्यतीत कर सकेगा।

प्रश्न – जिन लोगों ने कुलगुरु से दीक्षा ली है, क्या उससे उनलोगों का कोई लाभ होगा?

महाराज – भगवान का नाम जिस किसी भी व्यक्ति से लेने से ही हुआ।

प्रश्न – गुरुकृपा कैसे मिलती है?

महाराज – गुरुकृपा गुरुदेव को प्रेम करने से होती है। अब कहोगे, प्रेम कैसे होता है? प्रेम करते-करते प्रेम होता है।

प्रश्न – गुरु के प्रति श्रद्धा-भक्ति कैसे होती है महाराज?

महाराज – कई जन्मों से थोड़ा-थोड़ा सत्कर्म करते-करते कुछ पुण्य एकत्र होता है। इसी प्रकार, पुण्य जमा होते-होते, जब बहुत बढ़ जाता है, तब गुरु के प्रति भक्ति-श्रद्धा होती है।

प्रश्न – गुरु-पूर्णिमा की क्या विशेषता है महाराज?

महाराज – पावन गुरुपूर्णिमा के दिन भक्त अपने-अपने गुरु के प्रति श्रद्धा व्यक्त करते हैं। गुरु-पूर्णिमा को व्यास पूर्णिमा भी कहते हैं। क्योंकि इसी दिन व्यासदेव ने जन्म लिया था।

प्रश्न – व्यासदेव की जन्मतिथि को 'गुरुपूर्णिमा क्यों कहते हैं?

महाराज – एक वाक्य में कहा जाय तो, वेद और उपनिषदों के कठिन तत्त्वों को पुराणादि की रचना के द्वारा जन-साधारण के लिए सहज बोधगम्य बनाया है, इसलिए व्यासजी की 'गुरु' के रूप में पूजा की जाती है। उन्होंने वेदों का 'विभाग' किया है, इसलिये उन्हें 'वेद व्यास' भी कहते हैं। इसके अतिरिक्त उन्होंने सम्पूर्ण उपनिषदों के मूल विषयों को सुव्यवस्थित कर 'ब्रह्मसूत्र' की रचना की है। अठारह पुराण भी उन्हीं की रचना कही जाती है। महाभारत भी उन्हीं की रचना है। गीता महाभारत का ही अंश है, जिसमें सभी शास्त्रों के मूल विषय, सारतत्त्व अत्यन्त सहजता से लिपिबद्ध हैं। महाभारत और पुराणों के अतिरिक्त व्यासदेव ने एक संहिता की रचना की, जिसमें हिन्दुओं की आचार-पद्धति का वर्णन है। उन्नीस संहिताओं में 'व्यास संहिता' श्रेष्ठ है। **(क्रमशः)**

हल्दीघाटी के वीर योद्धा

तलवारों की झनझनाहट, घोड़ों के टापों की आवाज, सीने पर कवच पहने हुए हिन्दू सैनिक, सब ओर जोश और उमंग – आज वह दिन है, जिसके लिए क्षत्रिय आतुरता से प्रतीक्षा करते हैं। आज राजपूत सेना में अदम्य उत्साह और बलिदान की भावना उमड़ पड़ी है। उन्हें गर्व है कि आस-पास के सभी राजे-रजवाड़ों ने मुगलों के सामने गुलामी स्वीकार कर ली है, किन्तु उनके राजा महापराक्रमी महाराणा प्रताप स्वतन्त्रता से अपना सिर ऊँचा किए हुए हैं।

इतिहास में इस लड़ाई को हल्दीघाटी की लड़ाई कहा जाता है। भारत पर मुगलों का शासन था। मुगलाधिपति अकबर धीरे-धीरे वहाँ के हिन्दू राजाओं, सामन्तों को अपने अधीन कर रहा था। बड़े-बड़े राजपूतों ने अकबर को अपना राजा मान लिया था। यहाँ तक कि वीर राजपूत माने जाने वाले मानसिंह भी अकबर की अधीनता स्वीकार कर चुके थे। मेवाड़ के राजा महाराणा प्रताप को भी अकबर ने सन्धि के लिए प्रस्ताव भेजा और कहा कि वे उसकी अधीनता स्वीकार कर लें।

महाराणा प्रताप के अन्दर स्वतन्त्रता की भावना कूट-कूट कर भरी थी। उन्हें अपनी मातृभूमि मेवाड़ से उत्कट प्रेम था। वे अपने प्राण त्याग सकते थे, किन्तु किसी मुगल के गुलाम होकर रहना उनके लिए असहनीय था। उन्होंने अकबर का सन्धि-प्रस्ताव ठुकरा दिया। सन्धि ठुकराने का अर्थ था – युद्ध के लिए तैयार रहना।

अकबर ने महाराणा प्रताप से लड़ने के लिए सेनापति के रूप में राजा मानसिंह और शहजादे सलीम को विशाल सेना के साथ भेजा। मानसिंह की सेना में तोप, तलवार, हाथी-घोड़ों सहित जितने सैनिक थे, उसके आधे भी महाराणा प्रताप की सेना में नहीं थे। किन्तु महाराणा प्रताप के साथ सत्य था और उसके साथ साहस, पराक्रम, मातृभूमि के प्रति त्याग की भावना थी।

१८ जून, १५७६ का वह दिन था। दोनों सेनाएँ हल्दीघाटी में एक-दूसरे के आमने-सामने आ गईं। महाराणा प्रताप जब अपने सर्वाधिक प्रिय घोड़े चेतक पर आते, तो उनकी छबि देखते ही बनती थी। अश्वराज चेतक पर सवार होते ही महाराणा की रग-रग में राजपूतों का खून खौलने लगता था। दोनों ओर की सेनाओं में घमासान युद्ध शुरु हुआ। महाराणा प्रताप के साथ माना झाला नाम के एक सरदार थे । वे भी बहुत फुर्ती के साथ मानसिंह की सेना का वध करते जा रहे थे।

शहजादा सलीम एक हाथी के ऊपर बैठकर युद्ध कर रहा था। महाराणा प्रताप अपने चेतक पर चलकर तलवाबाजी करते हुए उसके पास गए। चेतक ने जोर से छलांग मारकर सलीम के हाथी पर प्रहार किया। इसी बीच महाराणा प्रताप ने जोर से एक भाला फेंककर सलीम को घायल कर दिया। घायल सलीम वहाँ से भाग निकला।

इसी बीच महाराणा प्रताप को मुगल सेना ने चारों ओर से घेरकर घायल कर दिया। चेतक भी बुरी तरह घायल हो चुका था। किन्तु उसकी स्वामिभक्ति अपूर्व थी। घायल होकर भी वह अपने स्वामी का साथ दे रहा था। इतने में महाराणा की रक्षा के लिए माना झाला आ गए।

माना झाला ने सोचा कि यदि महाराणा प्रताप इस युद्ध में मारे गए, तो मेवाड़ की स्वतन्त्रता की आन-बान की रक्षा कौन करेगा? उन्होंने एक युक्ति सोची। वे चेतक के पास गए और उसकी पीठ पर चमड़े के पट्टों पर गढ़ा मेवाड़ का झंडा निकालकर अपने ऊपर लगा दिया। यह मेवाड़ का राजछत्र था। इसी छत्र के कारण मुगल सैनिक चारों ओर से महाराणा को घेरे हुए थे। इसी बीच माना झाला ने घायल महाराणा को घायल चेतक के साथ चले जाने के लिए कह दिया। अब दुश्मनों को लगा कि माना झाला ही मेवाड़ के राजा हैं। सब लोग उनकी ओर टूट पड़े।

माना झाला अकेले ही अनेक मुगलों के साथ लड़ते रहे और मारते रहे। लेकिन अकेले वे भी कितना लड़ते। वहीं उन्होंने वीरगति प्राप्त की। धन्य है माना झाला का

शेष भाग पृष्ठ ३८८ पर

सेवानिवृत्त जीवन कैसे बिताएँ? (३)

स्वामी आत्मानन्द

ईशावास्योपनिषद में कहा गया है कि इस संसार को भगवान से आवृत देखो। यह एक पक्ष है। दूसरा पक्ष है कि जहाँ तक तुम्हारी दृष्टि जाती है, सबके भीतर भगवान बैठे हुए हैं, वह भगवान का वासस्थान है, ऐसा अनुभव करो। इस प्रकार हमें सर्वत्र ईश्वर ही दिखाई देते हैं। त्याग के द्वारा भोग करो। भोग में कोई आपत्ति नहीं है। किन्तु कैसे भोग करें? संसार में सब जगह भगवान बैठे हैं, ऐसा अनुभव करते हुए भोग करें।

किसी के धन का लालच मत करो। धन भला किसका है? हमारे जीवन में लालच कभी-कभी बड़ा रूप धारण कर लेता है, जबकि हमारे पास इतना पैसा है, जिससे कि हम परिवार का ठीक-ठीक भरण-पोषण कर सकते हैं। जब हम सेवानिवृत्त होते हैं, तो कभी-कभी हमारी लोभ की वृत्ति इतनी बढ़ जाती है कि हमारे पास भरपूर पैसा रहने पर भी हमें संतोष नहीं होता है। यह लोभ-वृत्ति हमें सतत परेशान करती है तथा हमारा संतुलन बिगाड़ती रहती है। इसी वृत्ति पर अंकुश लगाने के लिए कहा गया – मा गृध: – लालच मत करो। इसका अर्थ है यदि हमारे पास बहुत सम्पत्ति है, तो वह सम्पत्ति प्रभु की है। हम केवल उसके न्यासी हैं।

रॉकफेलर के जीवन का एक दृष्टांत आपके समक्ष मैं रखना पसंद करूँगा। स्वामी विवेकानन्द उस समय शिकागो में थे। जब उन्होंने ११ सितम्बर, १८९३ ई. को शिकागो में विश्वधर्म-सम्मेलन में हिन्दू धर्म पर व्याख्यान दिया, तो विश्वप्रसिद्ध हो गये। उनका व्याख्यान सबसे बढ़िया, सबसे वैज्ञानिक और सबसे तार्किक था।

अपने व्याख्यानों से उन्होंने हिन्दू धर्म की पताका सबसे ऊपर फहरा दी। अमेरिका के बड़े से बड़े लोगों के घर के दरवाजे उनके लिये खुल गये। एक बार स्वामीजी एक अमेरिकी सज्जन के घर पर निवास कर रहे थे। रॉकफेलर भी उन दिनों वहीं थे। उन दिनों रॉकफेलर उतने प्रसिद्ध नहीं थे। रॉकफेलर फाउण्डेशन तब नहीं बना था, पर रॉ-कफेलर बहुत धनी थे। उनकी अपूर्व सम्पदा थी। जिस घर में स्वामीजी ठहरे हुए थे, उस घर के मालिक रॉकफेलर के मित्र थे।

मित्र ने कहा, "ओ ! रॉकफेलर ! सुनो ! हमारे यहाँ एक भारतीय संन्यासी ठहरे हैं, जिन्होंने अमेरिका क्या, सारी दुनिया में ही तहलका मचा दिया है, विशेषकर शिकागो में। तुम आकर के मिल लो, तुम्हें बड़ी प्रसन्नता होगी। रॉकफेलर ने कोई इच्छा नहीं जताई। एक प्रकार से उन्होंने ऐसा दिखाया कि उनकी इसमें रुचि नहीं है। ठीक है, कुछ दिन बीत गये।

अचानक रॉकफेलर के मन में क्या आता है, वे सुबह ही बिना किसी पूर्व सूचना के स्वामीजी से मिलने चले आये। जाकर दरवाजे पर आहट दी, जहाँ स्वामीजी रुके थे। बटलर आकर दरवाजा खोलता है। रॉकफेलर पूछते हैं, क्या स्वामीजी अन्दर हैं? "हाँ, हैं। मैं उन्हें सूचना दे दूँ?"– बटलर कहता है। रॉकफेलर ने कहा, "नहीं जरूरत नहीं। बताओ वे किस कमरे में हैं?" बटलर उन्हें अध्ययन कक्ष में ले जाता है, जहाँ स्वामी विवेकानन्द बैठे कुछ पत्र लिख रहे थे। जब रॉकफेलर आए, तो स्वामीजी ने देखा तक नहीं, वे लिख ही रहे थे। रॉकफेलर को लगा कि ये तो बड़ा दम्भी आदमी है, ऐसा बता रहा है जैसे उसने आहट ही नहीं सुनी है। जैसे काम में बहुत व्यस्त है। स्वामीजी लिखते-लिखते ही रॉकफेलर के जीवन में घटी कुछ घटनाओं को बताने लगे। रॉकफेलर खड़े-खड़े सुन रहे थे। स्वामीजी ने घटना-क्रम में कुछ ऐसी घटनायें बताईं, जिसे रॉकफेलर को छोड़कर दूसरा कोई नहीं जानता था। उसे बड़ा आश्चर्य हुआ कि इस आदमी को मेरे जीवन में घटी घटनाओं का पता कैसे चला? जबकि मुझको छोड़कर दूसरा कोई व्यक्ति इन्हें नहीं जानता है। इन बातों को बताने के पश्चात् स्वामीजी ने कहा, "देखो, रॉकफेलर! तुम्हारे पास इतनी जो धन-सम्पदा है, वह तुम्हारी नहीं है। इन्हें तुम अपनी समझने की भूल कर रहे हो। इसलिए तुम्हारे जीवन में ये सारे दुख हैं। भगवान ने तुम्हें इतनी धन-सम्पत्ति दी है। आज तुम मरोगे तो क्या इन्हें साथ में ले

जाओगे? इस सम्पदा में से तनिक-सा भाग भी तुम नहीं ले जा सकते। फिर भी तुम इस सम्पदा पर इतना घमंड कर रहे हो। ऐसा मानो कि यह भगवान का ट्रस्ट है और इसके तुम ट्रस्टी, न्यासी हो। ईश्वर के द्वारा नियुक्त किए गए हो। अत: तुम भगवान की इस धरोहर को भगवान के बन्दों की सेवा में लगा दो। लोगों की सहायता करने में इसे खर्च करो। रॉकफेलर को बड़ा क्रोध आया। कोई रॉकफेलर को इस प्रकार के उपदेश देने का साहस नहीं कर सकता था। वे नाराज होकर चले गए। जब मकान मालिक को मालूम पड़ा कि रॉकफेलर स्वामीजी से मिलने आए थे, तो उन्होंने पूछा, "क्यों, कैसा लगा स्वामीजी से मिलकर? तो रॉकफेलर ने कहा – अरे, बड़ा ही गम्भीर है तुम्हारा स्वामी। पर उन्होंने यह नहीं कहा कि उनके जीवन की कतिपय घटनाओं को स्वामीजी ने किस तरह बताया है। पर चिन्तन चल रहा है रॉकफेलर के मन में। और अचानक सात-आठ दिन बाद वे उसी प्रकार सुबह में स्वामीजी से मिलने आए। हाथ में उनके एक दस्तावेज था। आते ही जब बटलर ने दरवाजा खोला, तो उन्होंने कहा कि मुझे स्वामीजी के पास ले चलो। स्वामीजी अध्ययन कक्ष में थे। रॉकफेलर ने वह दस्तावेज उनके सामने पटकते हुए कहा, "ये लीजिए और मुझे इसके लिए धन्यवाद दीजिए।" स्वामीजी ने उनकी तरफ देखा ही नहीं। वे दस्तावेज को पलटते रहे। उसमें कई लाख डालर की सम्पत्ति किसी सेवा-संस्था को दान देने का उल्लेख था। स्वामीजी इस दस्तावेज को देखकर मुस्कुराये और उसे वापस करते हुए कहा, इसके लिये आपको धन्यवाद देना चाहिये। बाद में जब स्वामीजी नहीं थे, रॉकफेलर ने अपने एक भाषण में उस प्रसंग की चर्चा करते हुए कहा था, "उस समय मेरी आँखें बन्द थीं। पर मेरे जीवन में एक संन्यासी का आगमन हुआ और उन संन्यासी ने मेरी आँखें खोल दी। इस प्रकार आज जो सम्पत्ति मुझे मिली है, जब इसे मैं समाज की सेवा के लिए देता हूँ, तो मुझे सन्तुष्टि मिलती है।"

कोई अपने लड़के पर दो लाख रुपये खर्च करता है, किन्तु वही लड़का शादी होने के बाद उसकी ओर नहीं देखता है। यही जीवन का ठोस सत्य है। आप कितना ही कहते रहें कि मेरा लड़का कितना आज्ञाकारी है, मेरा लड़का बहुत अच्छा है। हर पिता का पुत्र उसके लिए बहुत अच्छा होता है, जब तक उसका विवाह नहीं हुआ होता है। पर उसके बाद कठिनाई होती है। पिता ने अपनी सारी सम्पत्ति दे दी, अपना बनाया मकान उसके नाम पर कर दिया, पर वृद्ध दम्पती को रहने के लिए ठीक से एक कमरा भी नहीं मिलता है। यह कोई अतिशयोक्ति नहीं है। यह जीवन का सत्य है, जीवन का अनुभव है। आप ये सब अनुभव करते हैं, फिर भी हममें से प्रत्येक पिता यही सोचता है कि वह लड़का ऐसा हुआ, पर मेरा लड़का ऐसा नहीं होगा। यही माया है। स्वामी विवेकानन्द ने एक व्याख्यान में कहा था – "हम सोचते हैं कि दूसरों के साथ होना ठीक है, पर मेरे साथ ऐसा नहीं होगा, ऐसा सोचना ही माया है, यही जीवन का सत्य है।" इसका अर्थ यह नहीं कि हम सब धन लुटा दें और बच्चों पर खर्च न करें। हम बच्चों की देखभाल ठीक से करें, किन्तु उसके साथ-साथ हममें जो वापस प्राप्त करने की प्रत्याशा बनी रहती है कि लड़का मेरी सेवा करेगा, मेरी देखभाल करेगा, यह ठीक नहीं है। क्योंकि जब हमारी इच्छा के अनुरूप ऐसा नहीं होता है, तब हमारे जीवन में हताशा आती है। यदि हम पहले से यह मानकर चलें कि ठीक है, संसार का ऐसा नियम है और मेरे लड़के के साथ भी ऐसा होगा, तो सम्भव है हम इस हताशा पर काबू कर पायेंगे। लेकिन जब हम सोचते हैं कि मेरे लड़के के साथ ऐसा नहीं होगा, मैं इसका अपवाद हूँ, तब जीवन में समस्या आती है। क्योंकि हमेशा समय हमारे अनुकूल नहीं होता। ऐसी ही परिस्थिति में कुछ लोग मुझसे रोकर पूछते हैं, स्वामीजी ! हम क्या करें? तो मैं उनको परामर्श देता हूँ। वह विचार आपके समक्ष भी रखता हूँ।

आप लड़के को पाल-पोसकर उसका विवाह कर दो। विवाह होने के बाद अपने से अलग एक मकान किराये पर दे दो और कहो – बेटा ! जाओ तुम लोग वहाँ आनन्द से रहो। हम लोग भी यहाँ आनन्द से रहें। आपलोग बीच-बीच में वहाँ आते-जाते रहिये। इससे आपके जीवन में शान्ति बनी रहेगी। लड़का यदि आकर कहता है, 'चलिए पिताजी ! हमारे साथ रहिए, आप अकेले रहते हैं, तो अच्छा नहीं लगता। यह सुनना बहुत ही अच्छा लगता है, पर जाकर के रहना अच्छा नहीं है। आप उस अच्छे लगने की ही तैयारी रखिये। दूसरों को बताने में गर्व का अनुभव कीजिए – मेरा बेटा मुझे बुलाता है, कहता है कि वह मेरे बिना रह नहीं सकता है। बच्चे को आपके बिना अच्छा नहीं लगता, यह ठीक है। यदि आप जाइए, तो अतिथि के रूप में दो-तीन

दिन रहिए और चले जाइये। यही भाव आप अपने जीवन में बनाकर रखिये। अधिक अपेक्षा मत कीजिए। आप जब अधिक अपेक्षा नहीं करते तथा जब उससे अधिक मिलता है, तो आप बड़े सुखी रहते हैं। आपकी शक्ति बढ़ती है, आपकी कर्म करने की क्षमता बढ़ती है।

दूसरी बात यह है कि सब कुछ आप अपने बेटे पर ही खर्च मत कीजिए। अपने लिए भी बचाकर रखिए। अपने और अपनी पत्नी के लिए एक घर बचाकर रखिए। बाद में वह घर आपके लड़के को ही मिलेगा। किन्तु उस पर आपका अधिकार होगा। आप अपनी इच्छानुसार उसका उपयोग कर सकेंगे। आपके पास जो पैसा है, उसमें से अपने बच्चों को दीजिए, किन्तु आपका हाथ बच्चों से माँगने के लिये कभी न उठे। अगर हाथ उठे भी, तो कुछ देने के लिए ही, लेने के लिए नहीं। हममें जब लेने की इच्छा उत्पन्न होती है, तो हम कहते हैं, "देखो भाई ! हम बूढ़े हो गए। मेरा लड़का कैसा निकम्मा निकला कि हमें देखता भी नहीं है। अरे, उसकी पढ़ाई पर हमने दो लाख खर्च कर दिया, जीवन की सारी कमाई फूँक दी, किन्तु वह मुझे एक बार भी नहीं पूछता। ऐसी मनोदशा हो जाती है। हम परिवार वालों की निन्दा करने लगते हैं। जो हमारे जीवन के लिए ठीक नहीं होता। इसलिए आप अपने बच्चों पर निर्भर रहने की, उनसे लेने की इच्छा वृत्ति को अवश्य ही नियंत्रण में रखें। अपनी सेवानिवृत्ति के समय का सदुपयोग करने की तैयारी रखिये। मैं इस सेवानिवृत्ति की तैयारी पर आए लोगों को धन्यवाद देता हूँ तथा आपके सुखमय एवं कर्मठ जीवन की कामना करता हूँ। **(समाप्त)**

हमारे देश के लिए इस समय आवश्यकता है, लोहे की तरह ठोस माँसपेशियों और मजबूत स्नायु वाले शरीरों की । आवश्यकता है इस तरह के दृढ़ इच्छाशक्ति-सम्पन्न होने की कि कोई उसका प्रतिरोध करने में समर्थ न हो । आवश्यकता है ऐसी अदम्य इच्छा-शक्ति की, जो ब्रह्माण्ड के सारे रहस्यों को भेद सकती हो । यदि यह कार्य करने के लिए अथाह समुद्र के मार्ग में जाना पड़े, सदा सब तरह से मौत का सामना करना पड़े, तो भी हमें यह काम करना ही पड़ेगा ।

– स्वामी विवेकानन्द

मैनपुरी की प्रतिज्ञा

रामप्रसाद बिस्मिल

है देश को स्वाधीन करना जन्म मम संसार में,
तत्पर रहूँगा मैं सदा अंग्रेज दल संहार में।
अन्याय का बदला चुकाना मुख्य मेरा कर्म है,
मद दलन अत्याचारियों का यह प्रथम शुचि कर्म है।
मेरी अनेकों भावनाएँ उठ रहीं हृद-धाम में,
बस शान्त केवल कर सकूँगा मैं उन्हें संग्राम में।
स्वाधीनता का मूल्य बढ़कर है सभी संसार से,
बदला चुकेगा हरणकर्ता के रुधिर की धार से।
अंग्रेज रुधिर प्रवाह से निज पितृगण तर्पण करूँ,
अंग्रेज सिर सहित भक्ति में जननी के अर्पण करूँ।
हो तुष्ट दु:शासन-रुधिर स्नान से यह द्रौपदी,
हो सहस्त्रबाहु विनाश से यह रेणुका सुख में पगी।
है कठिन अत्याचार का ऋण ब्रिटिश ने हमको दिया,
सह ब्याज उसके उऋण का कठिन प्रण हमने किया।
मैं अमर हूँ मेरा कभी भी नाश हो सकता नहीं,
है देह नश्वर त्राण इसका हो कहीं सकता नहीं।
होते हमारे मात जग में पददलित होगी नहीं,
रहते करोड़ों पुत्र के जननी दुखित होगी नहीं।
उद्धार हो जब देश का इस क्लेश कारागार से,
भयभीत तब होंगे नहीं हम जेल से तलवार से।
रहते हुए तन प्राण रण से मुख न मोड़ेंगे कभी,
कर शक्ति है जब तक न अपने शस्त्र छोड़ेंगे कभी।
परतन्त्र होकर स्वर्ग में भी वास की इच्छा नहीं।
स्वाधीन होकर नरक में रहना भला उससे कहीं।
है सुवर्ण पिंजर वास अति दुख पूर्ण सुन्दर कीर को,
वह चाहता स्वच्छंद विचरण अति विपिन गम्भीर को।
जंजीर की झनकार में शुभ गीत गाते जाएँगे,
तलवार के आघात में निज जय मचाते जाएँगे।
हे ईश ! भारतवर्ष में शत बार मेरा जन्म हो,
कारण सदा ही मृत्यु का देशोपकारक कर्म हो।

(क्रान्तिकारी आन्दोलन का इतिहास, पृ. ११७-१८)

विद्यार्थियों के लिए गीता

(स्वामी विवेकानन्द की वाणी के परिप्रेक्ष्य में भगवद्गीता का अध्ययन)

स्वामी आत्मश्रद्धानन्द

सम्पादक, वेदान्त केसरी, रामकृष्ण मठ, चेन्नई

(हिन्दी अनुवाद-संकलन - ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य)

८. मन की एकाग्रता

असंशयं महाबाहो मनो दुर्निग्रहं चलम्।
अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते।।६.३५।।

हे अर्जुन, मन कठिनाई से वशीभूत होने वाला तथा बहुत चंचल है, इसमें कोई सन्देह नहीं है, किन्तु हे कुन्तीपुत्र, बार-बार अभ्यास और वैराग्य से यह मन वशीभूत होता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – इन्द्रिय-निग्रह – इन्द्रियों को विषयों की ओर जाने से रोकना और उनको वश में लाकर अपनी इच्छा के अधीन रखना। इसे धार्मिक साधना की नींव ही कह सकते हैं। (वि.सा. ४.३९)

शनैः शनैरुपरमेद् बुद्ध्या धृतिगृहीतया।
आत्मसंस्थं मनः कृत्वा न किञ्चिदपि चिन्तयेत्।।६.२५।।

धैर्य के साथ बुद्धि के द्वारा धीरे-धीरे विरति का अभ्यास करें। इस ढंग से मन का संकल्प-विकल्प छोड़कर आत्मस्थ करके कुछ भी चिन्ता न करें, केवल आत्मचिन्तन करते रहें।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जब मन इन्द्रिय नामक भिन्न-भिन्न स्नायु-केन्द्रों में संलग्न रहता है, तभी समस्त बाह्य और आभ्यन्तरिक कर्म होते हैं। इच्छापूर्वक अथवा अनिच्छापूर्वक मनुष्य अपने मन को भिन्न-भिन्न (इन्द्रिय नामक) केन्द्रों में संलग्न करने को बाध्य होता है। इसीलिए मनुष्य अनेक प्रकार के दुष्कर्म करता है और बाद में कष्ट पाता है। मन यदि अपने वश में रहता, तो मनुष्य कभी अनुचित कर्म न करता। मन को संयत करने का फल क्या है? यही कि मन संयत हो जाने पर वह फिर विषयों का अनुभव करनेवाली भिन्न भिन्न इन्द्रियों के साथ अपने को संयुक्त न करेगा। ऐसा होने पर सब प्रकार की भावनाएँ और इच्छाएँ हमारे वश में आ जायेंगी। – स्वामी विवेकानन्द (वि.सा. १.८३)

यतो यतो निश्चरति मनश्चञ्चलमस्थिरम्।
ततस्ततो नियम्यैतदात्मन्येव वशं नयेत्।।६.२६।।

स्वभावतः चंचल मन अस्थिर भाव से जिन-जिन विषयों में दौड़ता जाता है, उन-उन विषयों से उस मन को संयत करके आत्मा में ही स्थिर रखें।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – हमारे प्रायः सभी क्लेशों का कारण हममें अनासक्ति के सामर्थ्य का अभाव है। अतएव मन की एकाग्रता के सामर्थ्य के विकास के साथ-साथ हमें अनासक्ति के सामर्थ्य का विकास अवश्य करना चाहिए। सब ओर से मन को हटाकर किसी एक वस्तु में उसे आसक्त करना ही नहीं, वरन् एक क्षण में उससे अनासक्त कर किसी अन्य वस्तु में स्थापित करना भी हमें अवश्य सीखना चाहिए। इसे निरापद बनाने के लिए इन दोनों का अभ्यास एक साथ बढ़ाना चाहिए। (वि.सा. ४.१०९)

यथा दीपो निवातस्थो नेङ्गते सोपमा स्मृता।
योगिनो यतचित्तस्य युञ्जतो योगमात्मनः।।६.१९।।

जैसे वायुरहित स्थान में दीपक की लौ कम्पित नहीं होती, स्थिर होती है, वैसे संयमित चित्तवाला योगी परमात्मा के ध्यान में स्थिर रहता है। ऐसी उपमा कही गयी है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – तेल की धार की तरह मन को एक ओर लगाये रखना चाहिए। जीव का मन अनेकानेक विषयों से विक्षिप्त हो रहा है। ध्यान के समय भी पहले-पहल मन विक्षिप्त होता है। मन में जो चाहे भाव उठें, उन्हें उस समय स्थिर होकर बैठकर देखना चाहिए। देखते देखते मन स्थिर हो जाता है और फिर मन में चिन्तन की तरंगें नहीं रहतीं। (वि.सा. ६.२२१)

९. विभिन्न प्रकार के सुख

सुखं त्विदानीं त्रिविधं शृणु मे भरतर्षभ।

अभ्यासाद्रमते यत्र दुःखान्तं च निगच्छति।।१८.३६।।

हे अर्जुन ! तीन प्रकार के सुख होते हैं, उसे सुनो। जिस सुख के दीर्घकाल तक अनुशीलन करने से मनुष्य के सभी दुखों का नाश हो जाता है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – अन्य प्राणी इन्द्रियों में सुख पाते हैं, मनुष्य बुद्धि में, और देव-मानव आध्यात्मिक ध्यान में। (वि.सा. १.९९)

यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम्।
तत्सुखं सात्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम्।।८.३७।।

जो सुख पहले विष की तरह दुख देता है, किन्तु उसका फल अमृत के समान होता है और जो सुख आत्मनिष्ठ बुद्धि की प्रसन्नता से उत्पन्न होता है, वही सात्विक सुख है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – संसारी लोगों का अनुभव हमें सिखाता है कि विषय-भोग ही जीवन का चरम लक्ष्य है। ये सब हमारे लिए भयानक प्रलोभन हैं। ...स्वयं अपने अनुभव किये हुए और दूसरों के अनुभव किये हुए विषयों से हममें जो दो प्रकार की कार्य-प्रवृत्तियाँ उत्पन्न होती हैं, उन्हें दबाना और इस प्रकार चित्त को उनके वश में नहीं आने देना ही वैराग्य कहलाता है। वे सब मेरे अधीन रहें, मैं उनके अधीन न होऊँ, इस प्रकार के मनोबल को वैराग्य कहते हैं और यह वैराग्य ही मुक्ति का एकमात्र उपाय है। (वि.सा. १.१२४)

विषयेन्द्रियसंयोगाद्यत्तदग्रेऽमृतोपमम्।
परिणामे विषमिव तत्सुखं राजसं स्मृतम्।।१८.३८।।

रूप, रस आदि विषयों और इन्दियों के संयोग से जो सुख उत्पन्न होता है, और पहले जो सुख अमृत-तुल्य होता है, किन्तु उसका फल विष की तरह दुखदायक होता है, उसे राजसिक सुख कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – इन्द्रियों से जो सुख मिलता है, वह अन्त में दुख ही लाता है। क्योंकि भोग से और अधिक भोग की तृष्णा होती है और इसका अनिवार्य फल होता है – दुख। मनुष्य की वासना का कोई अन्त नहीं, वह लगातार वासना पर वासना रचता जाता है और जब ऐसी अवस्था में पहुँचता है, जहाँ उसकी वासना पूर्ण नहीं होती, तो फल होता है – दुख। (वि.सा. १.१५९)

यदग्रे चानुबन्धे च सुखं मोहनमात्मनः।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम्।।१८.३९।।

जो सुख आरम्भ और परिणाम में बुद्धि को मोहित, भ्रमित कर देता है, जो सुख अति निद्रा, आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न होता है, उसे तामसिक सुख कहते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जिस प्रकार कुछ पशु अपने से दो-चार कदम आगे कुछ नहीं देख सकते, उसी प्रकार हममें से अधिकांश लोग दो-चार वर्ष के आगे भविष्य नहीं देख सकते। हमारा संसार मानो एक क्षुद्र परिधि-सा होता है, हम बस उसी में आबद्ध रहते हैं। उसके परे देखने का धैर्य हममें नहीं रहता और इसीलिए हम दुष्ट और अनैतिक हो जाते हैं। यह हमारी दुर्बलता है, शक्तिहीनता है। (वि. सा.३.९)

१०. दूसरों के साथ जीना सीखें

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः।।६.३२।।

हे अर्जुन, जो सभी प्राणियों में अपने को देखते हैं और समस्त जीवों में सुख या दुख को समान रूप से अनुभव करते हैं, तो वह योगी श्रेष्ठ है, यह मेरा मत है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यदि तुम ईश्वर को मनुष्य के मुख में नहीं देख सकते, तो उसे मेघ अथवा अन्य किसी मृत जड़ पदार्थ में अथवा अपने मस्तिष्क की कल्पित कथाओं में कैसे देखोगे? जिस दिन से तुम नर-नारियों में ईश्वर देखने लगोगे, उसी दिन से मैं तुम्हें धार्मिक कहूँगा। (वि.सा. ८.३४)

यद्यदाचरति श्रेष्ठस्तत्तदेवेतरो जनः।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनुवर्तते।।३.२१।।

श्रेष्ठ व्यक्ति जैसा-जैसा कर्म करते हैं, साधारण मनुष्य भी वैसा ही करते हैं। वह जिसे श्रेष्ठ कहकर प्रमाणित करते हैं, अन्य मनुष्य उसी का अनुसरण करते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – आओ, हम अपने साधनों को पूर्ण बना लें, फिर साध्य अपनी चिन्ता स्वयं कर लेगा। क्योंकि दुनिया तभी पवित्र और अच्छी हो सकती है, जब हम स्वयं पवित्र और अच्छे हों। वह है कार्य और हम हैं उसके कारण। इसलिए आओ, हम अपने आपको पवित्र बना लें ! आओ, हम अपने आपको पूर्ण बना लें। (वि.सा.९.१८२)

विद्याविनयसंपन्ने ब्राह्मणे गवि हस्तिनि।

शुनि चैव श्वपाके च पण्डिताः समदर्शिनः।। ५.१८।।

उन ज्ञानियों की अवस्था का वर्णन करते हुए कहते हैं – ब्रह्मविद्या और विनय से युक्त सात्त्विक ब्राह्मण में, गौ में, हाथी में, कुत्ते में और चाण्डाल में आत्मज्ञानी एक ही तत्त्व परमात्मा को देखते हैं।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – वास्तव में सच्चे प्रेम की प्रतिक्रिया दुखप्रद तो होती ही नहीं। उससे तो केवल आनन्द ही होता है। और यदि उससे ऐसा न होता हो, तो समझ लेना चाहिए कि वह प्रेम नहीं है, बल्कि वह और ही कोई चीज है, जिसे हम भ्रमवश प्रेम कहते हैं। जब तुम अपने पति, अपनी स्त्री, अपने बच्चों, यहाँ तक कि समस्त विश्व को इस प्रकार प्रेम करने में सफल हो सको कि उससे किसी भी प्रकार दुख, ईर्ष्या अथवा स्वार्थपरतारूप कोई प्रतिक्रिया न हो, केवल तभी तुम सम्यक् रूप से अनासक्त होने की अवस्था में पहुँच सकोगे। (वि.सा. ३.३४)

मत्तः परतरं नान्यत्किञ्चिदस्ति धनञ्जय।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव।।७.७।।

हे अर्जुन ! मुझसे श्रेष्ठतर तत्त्व और कुछ भी नहीं है, सूत में गूँथे हुए मणियों की तरह मुझमें यह समस्त जगत् ग्रथित है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – जब मनुष्य उच्चतम को प्राप्त कर लेता है, और वह न पुरुष देखता है, न स्त्री, न लिंग, न धर्म, न वर्ण, न जन्म, न ऐसे अन्य प्रकार के विभेदों को देखता है, वरन् वह आगे बढ़ता जाता है और उस दिव्यता का अनुभव करता है, जो मानव का सत्य स्वरूप है, वह मनुष्यों में अन्तर्हित है, केवल तभी वह विश्वबन्धुत्व को प्राप्त कर लेता है। (वि.सा. ९.१२१)

११. तुम्हारी त्रुटि स्थायी नहीं है

पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति।।६.४०।।

हे पार्थ, इस लोक या परलोक मे कहीं भी योगभ्रष्ट का विनाश नहीं होता। क्योंकि हे मित्र, कल्याण कर्म करनेवाले की दुर्गति नहीं होती।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – हम क्यों न लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का प्रयत्न करें ! असफलताओं से ही ज्ञान का उदय होता है। अनन्त काल हमारे सम्मुख है, फिर हम हताश क्यों हों ! दीवार को देखो। क्या वह कभी मिथ्या भाषण करती है? पर उसकी उन्नति भी कभी नहीं होती, वह दीवार की दीवार ही रहती है। मनुष्य मिथ्या भाषण करता है, किन्तु उसमें देवता बनने की भी क्षमता है। (वि.सा.७.१८४)

अपि चेदसि पापेभ्यः सर्वेभ्यः पापकृत्तमः।
सर्वं ज्ञानप्लवेनैव वृजिनं संतरिष्यसि।।४.३६।।

यदि सभी पापियों से भी तुम अपने को अधिक पापी समझो, तो भी ज्ञान रूपी नौका से पाप समुद्र पार हो सकोगे।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – मनुष्य कितनी ही अवनति की अवस्था में क्यों न पहुँच जाय, एक समय ऐसा अवश्य आता है, जब वह उससे बहुत दुखित होकर एक ऊर्ध्वगामी मोड़ लेता है और अपने में विश्वास करना सीखता है। किन्तु हम लोगों को इसे शुरू से ही जान लेना अच्छा है। हम आत्मविश्वास सीखने के लिए इतने कटु अनुभव क्यों प्राप्त करें? मनुष्य-मनुष्य के बीच जो भेद है, वह केवल आत्मविश्वास की उपस्थिति तथा अभाव के कारण ही है, यह सरलता से ही समझ में आ सकता है। इस आत्मविश्वास के द्वारा सब कुछ हो सकता है। (वि.सा. ८.१२)

अपि चेत्सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक्।
साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः।।९.३०।।

यदि अत्यन्त दुराचारी व्यक्ति भी एकाग्रता से मेरा भजन करता है, तो उसे सज्जन ही समझना चाहिए। क्योंकि उसका संकल्प अच्छा है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – तू क्यों रोता है भाई? तेरे लिए न मृत्यु है, न रोग। तू क्यों रोता है, भाई? तेरे लिए न दुख है न शोक। तू क्यों रोता है, भाई? तेरे विषय में परिणाम या मृत्यु की बात कही ही नहीं गयी। तू तो सत्स्वरूप है। (वि.सा.६.२४६)

क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं निगच्छति।
कौन्तेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति।। ९.३१।।

क्योंकि वह व्यक्ति शीघ्र ही धर्मात्मा हो जाता है और शाश्वत शान्ति को प्राप्त करता है। हे अर्जुन ! यह निश्चित जान लो, मेरे भक्त का कभी विनाश नहीं होता।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – आओ हम प्रत्येक व्यक्ति में घोषित करें – उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत – उठो,

जागो और जब तक तुम अपने अन्तिम ध्येय तक नहीं पहुँच जाते, तब तक चैन न लो। उठो, जागो, निर्बलता के इस व्यामोह से जाग जाओ। वास्तव में कोई भी दुर्बल नहीं है। आत्मा अनन्त, सर्वशक्तिसम्पन्न और सर्वज्ञ है। इसलिए उठो, अपने वास्तविक रूप को प्रकट करो। तुम्हारे अन्दर जो भगवान् है, उसकी सत्ता को ऊँचे स्वर में घोषित करो, उसे अस्वीकार मत करो। (वि.सा. ५.८९)

१२. प्रार्थना

त्वमक्षरं परमं वेदितव्यं-
त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
त्वमव्ययः शाश्वतधर्मगोप्ता
सनातनस्त्वं पुरुषो मतो मे।।११.१८।।

तुम परब्रह्म, अद्वितीय, परमश्रेष्ठ ज्ञातव्य वस्तु हो, तुम इस संसार के एकमात्र आश्रय हो, तुम नित्य सनातन धर्म के रक्षक और अनादि परमात्मा हो, यह मेरा अभिमत है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – 'संसार में धन की खोज करते-करते हे प्रभु, मैंने केवल तुम्हीं को एकमात्र धन पाया, मैं तुम्हारे चरणों में अपनी बलि देता हूँ। किसी प्रेमास्पद की खोज करते-करते, हे नाथ, केवल तुम्हीं को मैंने एकमात्र प्रेमास्पद पाया। मैं तुम्हारे चरणों में अपनी बलि देता हूँ।' हमें रात-दिन यही कहते रहना चाहिए। (वि.सा. ३.७६)

त्वमादिदेवः पुरुषः पुराण-
स्त्वमस्य विश्वस्य परं निधानम्।
वेतासि वेद्यं च परं च धाम
त्वया ततं विश्वमनन्तरूप।।११.३८।।

हे अनन्तरूपधारी कृष्ण, तुम देवताओं के भी आदिदेव, तुम अनादि पुरुष, इस विश्व के एकमात्र श्रेष्ठ लयस्थान, ज्ञाता और ज्ञेय तथा परम पद भी हो। तुम्हारे द्वारा ही यह जगत व्याप्त है।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – तू ही हमारा पिता, माता एवं प्रिय मित्र है। तू ही संसार का भार वहन करता है। अपने जीवन का भार वहन करने में हमें तू सहायता दे। तू ही हमारा मित्र है, हमारा प्रियतम है, हमारा पति है –तू ही 'हम' है ! (वि.सा. ६.२४६)

पितासि लोकस्य चराचरस्य
त्वमस्य पूज्यश्च गुरुर्गरीयान्।
न त्वत्समोऽस्त्यभ्यधिकः कुतोऽन्यो
लोकत्रयेऽप्यप्रतिमप्रभाव।।११.४३।।

हे अतुलनीय प्रभावशाली कृष्ण, तुम इस चराचर संसार के पिता हो, पूज्य और गुरु से भी अधिक पूजनीय हो। तीनों लोकों में तुमसे बड़ा अन्य कौन होगा?

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – यह ज्ञान उसी हृदय में प्रकाशित होता है, जो पवित्र है। असीम प्रयास के बिना जिसका दर्शन नहीं होता, जो गुप्त है, हृदय के गूढ़तम प्रदेश में निहित है, जो पुराण पुरुष है, इन बाह्य नेत्रों से जो देखा नहीं जा सकता, उसके आत्मा के नेत्रों से देखकर मनुष्य सुख और दुख, दोनों से अतीत हो जाता है। जिसे यह रहस्य मालूम है, वह अपनी सम्पूर्ण व्यर्थ वासनाओं का त्याग कर देता है और पूर्णत्व को प्राप्त कर दिव्य आनन्द का अनुभव करने लगता है। (वि.सा. ३.१६२)

तस्मात्प्रणम्य प्रणिधाय कायं-
प्रसादये त्वामहमीशमीड्यम्।
पितेव पुत्रस्य सखेव सख्युः
प्रियः प्रियायार्हसि देव सोढुम्।।११.४४।।

हे कृष्ण, मैं श्रद्धापूर्वक दंडवत प्रणाम करते हुए आपसे क्षमा माँगता हूँ। जैसे पिता पुत्र का, मित्र मित्र का तथा प्रेमी प्रेमास्पद का अपराध क्षमा करते हैं, वैसे ही तुम भी क्षमा करो।

स्वामी विवेकानन्द की वाणी – दिन-रात यही जपती रहो –'तुम्हीं मेरे पिता हो, माता हो, पति हो, प्रिय हो, प्रभु हो तथा ईश्वर हो, मैं तुम्हारे सिवाय और कुछ भी नहीं चाहती, कुछ भी नहीं। तुम मुझमें हो, मैं तुममें हूँ, तुममें और मुझमें कोई अन्तर नहीं है।' धन नष्ट हो जाता है, सौन्दर्य विलीन हो जाता है, जीवन तेजी से समाप्त हो जाता है तथा शक्ति लुप्त हो जाती है, किन्तु प्रभु चिरकाल विद्यमान रहते हैं, प्रेम निरन्तर बना रहता है। (वि.सा. २.३८९)

गीता के सम्बन्ध में कुछ महान पुरुषों के विचार

गीता का अर्थ क्या है? उसे दस बार कहने से जो होता हैं वही। दस बार 'गीता' 'गीता' कहने से 'त्यागी' 'त्यागी' निकल आता है। गीता यह शिक्षा दे रही है – हे जीव, तू सब छोड़कर ईश्वर-प्राप्ति की चेष्टा कर।

– भगवान श्रीरामकृष्ण परमहंसदेव

गीता में श्रीकृष्ण ने जो कहा है, वैसा महान उपदेश जगत् में और कहीं नहीं है। जिन्होंने उस अद्भुत काव्य की रचना की थी, वे उन सब विरले महात्माओं में से एक थे, जिनके जीवन द्वारा समग्र जगत् में नव जीवन की एक लहर दौड़ जाती है। गीता के रचनाकार जैसा विलक्षण मस्तिष्क मनुष्य जाति और कभी नहीं देख पायेगी।

– स्वामी विवेकानन्द

गीता विश्वजननी है। वह किसी को भी वापस नहीं लौटाती। जो कोई भी उसके पास जाता है, उसके लिये उसका दरवाजा सदा खुला रहता है। विफलता क्या है, यह गीता का सच्चा समर्थक नहीं जानता। वह सदैव चिरस्थायी सुख तथा शान्ति में निवास करता है। लेकिन संशयवादी एवं जिसको अपने ज्ञान तथा अध्ययन का अहंकार है, उसके पास यह सुख तथा शान्ति नहीं आती। यह उन्हीं के लिए है, जो विनम्र है और श्रद्धा एवं मन की एकाग्रता के साथ उसकी पूजा करते हैं। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई भी मनुष्य, जो उसकी इस श्रद्धा तथा एकाग्रता से पूजा करता हो, उसके पास से निराश होकर वापस गया हो।

– महात्मा गाँधी

गीता आध्यात्मिकता के क्षेत्र में मानव जाति को दिया गया सर्वश्रेष्ठ उपदेश है। ... हमारी मुख्य राष्ट्रीय सम्पदा है, हमारी भविष्य की आशा है।

– श्रीअरविन्द (१८७२-१९५०)

(राष्ट्रभक्त और आध्यात्मिक पुरुष)

मेरे जानकारी में विश्व साहित्य में ऐसी कोई भी पुस्तक नहीं है, जो भगवद्-गीता के समान श्रेष्ठ है, जो धर्म का भण्डार है, न केवल हिन्दुओं के लिए बल्कि सम्पूर्ण मानव जाति के लिए।

– मदन मोहन मालवीय

(बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक)

जब मैं भगवत्-गीता का अध्ययन तथा चिन्तन करता हूँ कि ईश्वर ने कैसे इस ब्रह्माण्ड की सृष्टि की, तो अन्य सभी अनावश्यक जान पड़ता है।

– अल्बर्ट आइन्स्टीन,

(वैज्ञानिक तथा नोबल पुरस्कार विजेता)

गीता के एक वाक्य का मूल्य मैसाचुसेट्स (संयुक्त राष्ट्र अमेरीका का एक देश, जिसकी राजधानी बोस्टन है) से हजारों गुणा अधिक है।

– हेनरी डेवीड थोरीय (१८१७-१८६२)

(अमेरीकन लेखक, प्रकृति-वैज्ञानिक एवं अन्तर्ज्ञानवादी, अतीन्द्रियवादी) (नैचुरलिस्ट तथा ट्रान्सडेन्टलिस्ट)

(गीता) बहुत सुन्दर है, शायद मानव जाति के मुख से निकला केवल एक सच्चा दार्शनीक गीत...शायद अति गहन एवं उच्च वस्तु जिसको विश्व ने कभी देखा हो। इस भारतीय काव्य को पहली बार जब मैं अपने राष्ट्र सिलेसिया में था, तो पढ़ा था। पढ़ते समय मैंने ईश्वर की अत्यधिक कृतज्ञता का अनुभव किया, क्योंकि उन्होंने मुझे इस ग्रन्थ से परिचित कराया । निश्चय ही यह संसार में पाया जाने वाला सबसे गूढ़ तथा महान तत्त्व होगा।

– विल्हेल्म वोन हम्बोल्ड्ट (१७६७-१८३५)

(पर्सिया के शिक्षामन्त्री)

मैं नि:संकोच कहता हूँ कि संसार के ज्ञात सभी धर्मों में गीता मौलिकता, भावना की उत्कृष्टता, तर्क-विवेचन तथा शैली में अद्वितीय तथा असाधारण ग्रन्थ है।

– लॉर्ड वारेन हेस्टिन्ग (१७५४-१८२६)

(भारत के प्रथम गर्वनर जनरल)

गीता संसार के किसी भी परिचित भाषा में लिखी गई सुन्दर दार्शनिक गीत है।

– रॉबर्ट ओपनहामर (१९०४-१९६७)

परमाणु बम के आविष्कारक) **(समाप्त)**

विवेकानन्द हैं नई चेतना

प्राचार्य ओ.सी. पटले

विवेकानन्द हैं नई चेतना जग को नव मार्ग दिखाते हैं।
अपनी दिव्य प्रभा से वे जग आलोकित कर जाते हैं।।
देश-विदेश भ्रमण करके भारत की महिमा गाते हैं।
भारत माँ के गौरव को वे जन-जन में बतलाते हैं।।
निज अनमोल विचारों से विश्व का मन हर लेते हैं।
भारतवर्ष की महिमा को फिर से उज्ज्वल कर देते हैं।।
नर-सेवा नारायण सेवा का डंका वे बजाते हैं।
पूर्णत्व प्राप्ति के लिये सदा संयम का पाठ पढ़ाते हैं।।
अपने दिव्य जीवन-वाणी से युगाचार्य बन जाते हैं।
भारत की स्वाधीनता का वे नया मन्त्र दे जाते हैं।।

स्वामी विवेकानन्द की कथाएँ और दृष्टान्त

(स्वामीजी ने अपने व्याख्यानों में दृष्टान्त आदि के रूप में बहुत-सी कहानियों तथा दृष्टान्तों का वर्णन किया है, जो १० खण्डों में प्रकाशित 'विवेकानन्द साहित्य' तथा अन्य ग्रन्थों में प्रकाशित हुए हैं। उन्हीं का हिन्दी अनुवाद क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है, जिसका संकलन स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

७७. रक्षाबन्धन की लाज

मैं तुम्हें एक सुन्दर राजपूत बालिका की कहानी सुनाता हूँ ।[१] हमारे देश में एक विचित्र प्रथा है, जिसे ''रक्षा'' कहते हैं । महिलाएँ पुरुषों के पास रेशम के धागों से बनी हुई एक छोटी-सी राखी भेज सकती हैं । यदि कोई बालिका किसी व्यक्ति को यह राखी भेज दे, तो वह उसका भाई हो जाता है ।

मुगल वंश का अन्तिम बादशाह एक बड़ा ही क्रूर व्यक्ति था, जिसने भारत के सबसे समृद्ध साम्राज्य को बरबाद कर डाला । अपने शासनकाल में उसने भी एक राजपूत सरदार की पुत्री की सुन्दरता के विषय में सुना । उसने आदेश भेज दिया कि उसे लाकर बादशाह के हरम में पहुँचा दिया जाय ।

बादशाह का सन्देशवाहक उसका चित्र लेकर उस युवती के पास गया और उसे वह चित्र दिखाया । युवती ने घृणा के साथ उसे अपने पाँवों से रौंद दिया और बोली, ''राजपूत बालिका तुम्हारे मुगल बादशाह के साथ ऐसा ही सलूक करती है ।'' इसके फलस्वरूप बादशाह की सेना ने राजपुताना की ओर कूच कर दिया ।

निराश होकर सरदार की पुत्री ने एक उपाय सोच निकाला । उसने बहुत-सी राखियाँ लीं और उन्हें राजपूत राजाओं के पास इस सन्देश के साथ भेज दिया, ''आकर हमारी सहायता करो ।'' सभी राजपूत वहाँ आकर एकत्र हो गये और इसके फलस्वरूप बादशाही सेना को वापस लौट जाना पड़ा । [CW, 9:199-200]

७८. प्रार्थना में मनोनियोग

एक मुसलमान एक बगीचे में बैठकर प्रार्थना कर रहा था । वे लोग बड़े नियमित रूप से अपनी प्रार्थनाएँ किया करते हैं । समय हो जाने पर वे चाहे जहाँ भी हों, वहीं पर प्रार्थना प्रारम्भ कर देते हैं । वे धरती पर गिरते हैं, फिर उठते हैं, फिर गिरते हैं, फिर उठते हैं । इसी प्रकार उनकी प्रार्थना चलती रहती है । जब प्रार्थना का समय हुआ, तो उन्हीं में से एक व्यक्ति एक उद्यान में था, अत: वह वहीं धरती पर घुटने टेककर प्रार्थना करने लगा । उसी बगीचे में एक बालिका अपने प्रेमी की प्रतीक्षा कर रही थी और उसे उद्यान के दूसरी ओर अपने प्रियतम की झलक मिली । उसके पास पहुँचने की जल्दी में उसने उस प्रार्थना करते हुए व्यक्ति को नहीं देखा और उसके ऊपर से होकर चली गयी । वह एक बड़ा ही कट्टर मुसलमान था, ठीक वैसे ही जैसे कि यहाँ (अमेरिका में) प्रेसबिटेरियन लोग हुआ करते हैं । दोनों ही चिर काल के लिये नरक की अग्नि में विश्वास करते हैं । इसलिये जब उसके शरीर के ऊपर से लाँघकर गयी, तो उस मुसलमान के क्रोध का आप अन्दाजा लगा सकते हैं – वह उस लड़की को मार डालना चाहता था । परन्तु वह लड़की बुद्धिमान थी । वह बोली, ''बकवास बन्द करो । तुम मूर्ख और मिथ्याचारी हो ।''

''क्या कहा! मैं मिथ्याचारी हूँ?''

''हाँ, मैं तो अपने जागतिक प्रेमी से मिलने जा रही थी, अत: मैंने तुमको वहाँ नहीं देखा; परन्तु तुम तो अपने स्वर्गिक प्रियतम से मिलने जा रहे हो, इसलिये तुम्हें तो यह पता ही नहीं चलना चाहिये कि कोई लड़की तुम्हारे शरीर को लाँघ कर जा रही है ।'' (CW, 9:233, 234)

७९. प्रकृति फेरिस ह्वील की तरह है

तुम लोगों ने कदाचित् शिकागो में फेरिस व्हील (Ferris Wheel) देखा होगा । उसका चक्का घूमता है और उससे लटकते हुए छोटे-छोटे हिंडोले एक के बाद एक करके आते रहते हैं । बहुत-से लोग उन हिंडोलों में बैठ जाते हैं और उनका चक्र पूरा हो जाने के बाद वे उनसे बाहर निकल आते हैं । इसके बाद नये लोगों की टोली उनमें प्रवेश करती है । मनुष्यों की प्रत्येक टोली – निम्नतम पशुओं से लेकर उच्चतम मनुष्य तक के जीव एक अभिव्यक्ति के समान है । प्रकृति इस फेरिस व्हील के चेन के समान है, जो अनन्त है । और ये छोटे-छोटे हिंडोले मानो विभिन्न शरीर या आकृतियाँ हैं, जिनमें जीवों की नई-नई टोलियाँ सवार होती हैं और तब तक ऊपर उच्च से उच्चतर अवस्था में उठती हैं, जब तक कि वे पूर्ण होकर इस चक्र से बाहर नहीं निकल आतीं । (२/१२५-२६)

---

१. राजस्थान किशनगढ़ के राजा विक्रम सिंह की पुत्री चारुमती या रूपमती । चारुमती बँगला में बंकिम चन्द्र चैटर्जी द्वारा लिखित ऐतिहासिक उपन्यास की मुख्य पात्र है ।

प्रश्नोत्तर-रत्नमालिका

श्रीशंकराचार्य

का च परदेवतोक्ता चिच्छक्तिः को जगद्भर्ता
सूर्यः सर्वेषां को जीवनहेतुः स पर्जन्यः ।।५४।।

प्र. परदेवता किसे कहते हैं?
उ. चित्शक्ति अथवा चेतन शक्ति को परदेवता कहते हैं ।
प्र. संसार का भरण-पोषण करने वाला कौन है?
उ. सूर्य संसार के पोषण कर्ता है।
प्र. सबके जीवन-आश्रय में कारण क्या है?
उ. मेघ (वर्षा के कारण) सबके जीवन का कारण है।

कः शूरो यो भीतत्राता त्राता च कः सद्गुरुः ।
को हि जगद्गुरुरुक्तः शंभुः ज्ञानं कुतः शिवादेव ।।५५।।

प्र. शूर कौन है?
उ. जो भयभीत की रक्षा करता है, वह शूर है।
प्र. रक्षक कौन है?
उ. सद्गुरु ही रक्षक है।
प्र. जगत-गुरु किसे कहा गया है?
उ. भगवान शंकर को जगत्-गुरु कहा गया है।
प्र. ज्ञान कहाँ से प्राप्त होता है?
उ. भगवान शंकर से ज्ञान प्राप्त होता है।

मुक्तिं लभेत कस्मान् मुकुन्दभक्तेः मुकुन्दः कः ।
यस्तारयेदविद्यां का चाविद्या यदात्मनोऽस्फूर्तिः ।।५६।।

प्र. मनुष्य को मुक्ति किससे प्राप्त होती है
उ. मुकुन्द (भगवान) की भक्ति से मुक्ति प्राप्त होती है।
प्र. मुकुन्द कौन है?
उ. जो अविद्या से पार पहुँचाए, वही मुकुन्द है।
प्र. अविद्या क्या है?
उ. आत्मा की विस्मृति अविद्या है।

कस्य न शोको यः स्यादक्रोधः किं सुखं तुष्टिः ।
को राजा रञ्जनकृत् कश्च श्वा नीचसेवको यः स्यात् ।।५७।।

प्र. शोक किसे नहीं होता?
उ. जिसे क्रोध नहीं आता, उसे शोक नहीं होता।
प्र. सुख क्या है?
उ. सन्तोष ही सुख है।
प्र. राजा कौन है?
उ. जो प्रजा का (लालन-पालन द्वारा) रंजन करे, वह राजा है।
प्र. कुत्ते (निम्न योनि) के समान हेय कौन है?
उ. जो नीच-पामर का सेवक है, वह हेय है।

को मायी परमेशः क इन्द्रजालायते प्रपञ्चोऽयम् ।
कः स्वप्ननिभो जाग्रद्व्यवहारः सत्यमपि च किं ब्रह्म ।।५८।।

प्र. मायापति कौन है?
उ. परमेश्वर मायापति हैं।
प्र. इन्द्रजाल के समान क्या प्रतीत होता है?
उ. यह (नामरूपात्मक) संसार इन्द्रजाल के समान है।
प्र. स्वप्न के समान क्या है?
उ. जाग्रत-अवस्था में व्यवहार स्वप्न के समान है।
प्र. सत्य (त्रिकाल-अबाधित) क्या है?
उ. ब्रह्म ही सत्य है।

किं मिथ्या यद्विद्यानाश्यं तुच्छं तु शशविषाणादि ।
का चानिर्वचनीया माया किं कल्पितं द्वैतम् ।।५९।।

प्र. मिथ्या क्या है?
उ. जो विद्या (ब्रह्मज्ञान) से नष्ट हो जाए, वह मिथ्या है।
प्र. तुच्छ वस्तु क्या है?
उ. शशशृङ्ग, आकाश-पुष्प आदि के समान वस्तुएँ तुच्छ है।
प्र. अनिर्वचनीय वस्तु क्या है?
उ. माया अनिर्वचनीय है।
प्र. कल्पित (अध्यस्त) क्या है?
उ. द्वैत जगत अधिष्ठान चैतन्य में कल्पित है।

किं पारमार्थिकं स्यादद्वैतं चाज्ञता कुतोऽनादि ।
वपुषश्च पोषकं किं प्रारब्धं चान्नदायि किं चायुः ।।६०।।

प्र. पारमार्थिक वस्तु क्या है?
उ. अद्वैत ब्रह्म पारमार्थिक वस्तु है।
प्र. अविद्या किससे हुई?
उ. अविद्या अनादि काल से है।
प्र. शरीर का पोषण करने वाला कौन है?
प्र. प्रारब्ध कर्म शरीर का पोषण करते हैं ।
प्र. अन्न देने वाला कौन है?
प्र. प्रारब्ध के अनुसार प्राप्त जीवनावधि ।

साधक-जीवन कैसा हो? (२०)

स्वामी सत्यरूपानन्द
सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर (छ.ग.)

किन्तु उसके लिए हमें जीवन भर संघर्ष करना पड़ेगा, हमारे जीवन का लक्ष्य सहज रूप से हमारे सामने हो। जीवन में शम-दम हो। दम अर्थात् अशुभ इच्छाओं के क्रियान्वयन पर अंकुश लगाना और शम अर्थात् विचार बुद्धिपूर्वक अशुभ इच्छाओं की पूर्ति के दुष्परिणामों पर विचार करना। अभी हमारा निकटतम लक्ष्य हो – अपने शरीर, मन, बुद्धि आदि की दासताओं से मुक्त होना। इन दासताओं से मुक्त होने के लिए हमें आत्मनिरीक्षण और आत्मपरीक्षण कर शम का अभ्यास करना होगा। मान लीजिए मन में रबड़ी खाने की इच्छा हुई, तो मन को बताना पड़ेगा कि देखो, रबड़ी खाने से केवल स्वाद का सुख मिलता है, शरीर के लिये उसकी आवश्यकता नहीं है। शरीर के लिए जो चाहिए वह बिना माँगे ही पर्याप्त मिल रहा है।

मैंने पहले निवेदित किया था, साधना सतत एवं निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। मन को छोटे बच्चों की तरह समझाने से मन समझ जाता है। किन्तु मन को हम तुरन्त अपना दास नहीं बना सकते। मन को धीरे-धीरे युक्ति से लाभ-हानि को समझाना होगा। तब वह धीरे-धीरे हमारे वश में हो सकेगा। मन को वश में करने की यह मनोवैज्ञानिक पद्धति है। हजारों वर्ष पूर्व हमारे ऋषियों ने सैकड़ों प्रयोगों द्वारा पीढ़ी-दर-पीढ़ी हमें यह सिद्ध करके दिखा दिया है कि किस प्रकार मन को प्रशिक्षित किया जाए। मन को प्रशिक्षित करने की प्रक्रिया भगवान श्रीकृष्ण गीता में बताते हैं – 'शनैः शनैः उपरमेत्' – धीरे-धीरे मन को समझाओ। बच्चे जैसे मन को समझाने से मन की उच्छृंखलता, चंचलता दूर हो जायेगी।

इस सम्बन्ध में एक घटना का उल्लेख करता हूँ। आज से लगभग ४५ साल पहले की घटना होगी। तब मैं बेलूड़ मठ में रहता था। तब हम लोग ब्रह्मचारी थे। ब्रह्मचारी प्रशिक्षण केन्द्र में रहते थे। एक दिन बेलूड़ मठ में किसी भक्त ने भंडारा दिया। भंडारे में जिसको जो वस्तु जितना खाना है खाया। रविवार का दिन था। शाम को टी.सी. में चाय के समय हम सब लोग बैठकर वहाँ डींग हाँक रहे थे कि कौन क्या-क्या और कितना खाया। हम लोग जहाँ बैठकर गप-शप कर रहे थे, उसके ठीक सामने हमारे प्राचार्य स्वामी बोधात्मानन्दजी महाराज रहते थे। वे महापुरुष महाराज के शिष्य थे। उच्च कोटि के साधक संन्यासी थे। उस समय वे ७५ वर्ष के रहे होंगे। उनका कमरा बंद था और हम लोग अपनी-अपनी डींगें हाँक रहे थे। उतने में ही उन्होंने कमरा खोला और रुष्ट होकर कहा – ''खाए तो खाए, अब उसकी जुगाली क्यों कर रहे हो?'' जैसे गाय पहले खा लेती है फिर बैठकर जुगाली करती रहती है। वे बड़े शान्त प्रकृति के थे। हम सब लोग डरकर ऊपर भाग गये। सभी भयभीत और दुखी थे कि हमारे प्रिंसिपल महाराज नाराज क्यों हो गए? खैर, हमलोग सन्ध्या प्रार्थना में गए, प्रणाम आदि करके लौटे।

फिर रात को भोजन के बाद मित्रों ने मुझसे कहा, आप पूछिए कि महाराज हमलोगों पर क्यों नाराज हो गये? दुख तो मुझे भी लग रहा था। मैंने उनको प्रणाम किया। उन्होंने कहा क्यों? क्या हुआ? मैंने नम्रता से पूछा, महाराज, क्या हम लोगों से शाम की चाय पीते समय कुछ भूल हो गयी? हमलोग हल्ला-गुल्ला कर रहे थे, उससे आपके विश्राम में कुछ बाधा हुई? आपने कहा कि ''खाए तो खाए पर उसकी जुगाली क्यों कर रहे हो?'' यह बात हम लोगों की समझ में नहीं आयी। उनकी ही बात मैं आप लोगों से निवेदन करना चाहता हूँ, वह साधक जीवन का एक महान सूत्र है। उन्होंने कहा, ठीक से सुनो – ''विषय-भोग की अपेक्षा विषय-भोगों की चर्चा अधिक हानिकारक है।'' कैसे? ''तुम लोग युवक हो, इतना खाए, ठीक है। अधिक खा लिया, तो एक बार उपवास करने से, रात को नहीं खाने से पेट ठीक हो जाएगा। अधिक-से-अधिक दवा की एक गोली ले ली, तो पेट ठीक हो जाएगा। किन्तु तुम लोग जो चर्चा कर रहे थे, यह चर्चा तुम्हारे मन में स्थायी छाप छोड़ रही है। तुम सुस्वादु भोजन के लोभ का बीज अपने मन में बो रहे हो और अब अगर सावधान नहीं रहे, तो इसी चिन्ता में रहोगे कि अब कहाँ भंडारा होने वाला है। न पढ़ने में मन लगेगा, न जप में मन लगेगा। मन भंडारे में रहेगा। इस प्रकार एक दिन भंडारे का लोभ ही तुम्हारी साधना को

निगल जाएगा।''

इसलिए साधक या साधिका को विषय-चर्चा से बचना चाहिए। आप गृहस्थ हैं। कई बार ऐसी परिस्थितियाँ आती हैं कि नहीं कहना कठिन हो जाता है। किसी के विवाह में गए, सावधानी से कुछ खा लिया, कुछ देख लिया, किन्तु उसके बाद उसकी चर्चा नहीं करनी चाहिए। विषय की चर्चा विष का बीज है, जो हमें सदैव उन विषय भोगों की ओर प्रेरित करती रहती है। कैसे करती है? मन को थोड़ा समझना साधना की दृष्टि से परमावश्यक है। इसको समझे बिना हम यन्त्रवत साधना तो कर लेंगे, लेकिन उसका अपेक्षित परिणाम नहीं होगा। मान लो, राम-राम, राम-राम जप रहे हैं, किन्तु संयम नहीं है, विषय-चर्चा पर विराम नहीं है, तो बहुत लाभ नहीं होगा। विषयों की चर्चा का विष-बीज कल्पना के जल से सिंचित होने लगता है। कल्पना से सिंचित वासना तीव्र से तीव्रतर होती जाती है और एक दिन हमें विषय भोगों में डुबा देती है। अत: साधक-साधिका को विषय-भोगों की चर्चा कभी नहीं करनी चाहिए, उनके चिन्तन का तो प्रश्न ही नहीं है।

मन में विषयों के प्रति रुचि न जगे, उसके लिए हमें क्या करना चाहिए? भगवान श्रीकृष्ण गीता (१३.८) में कहते हैं – **जन्म-मृत्यु-जरा-व्याधि-दुख-दोषानुदर्शनम्।** हम विषय-भोगों के परिणामों पर विचार करें। उनसे मिलनेवाले सतत दुखों पर विचार करें, उनमें दोषों को देखें। जिन विषयों से हम बचना चाहते हैं, उनमें दोष है, दुख है, इसका सतत स्मरण रखें।

मैं एक बार बम्बई किसी कार्यक्रम में व्याख्यान देने गया था। वहाँ एक सज्जन ने ३ लाख रुपये का चश्मे का एक फ्रेम खरीदकर पहना था। वह समाचार अखबारों में छपा था। अब यदि हम उसकी प्रशंसा करें, तो उसका बीज मैंने अपने मन में बोया। भारत जैसे देश में जहाँ लाखों लोग आधे पेट खा रहे हैं और हजारों भूखों रहते हैं, ३ लाख के चश्मे का फ्रेम कितना उचित है? इस पर आप विचार करें।

मैं आपको एक घटना बताता हूँ। एक बार मैं दिल्ली गया था। दिल्ली में मेरे एक मित्र हैं। वे बड़े संपन्न हैं। उन्होंने एक दिन दोपहर में भोजन के लिए बुलाया था। उनकी दो-तीन पुत्रियाँ हैं तथा वे सेवापरायण भी हैं। मुझसे उम्र में छोटे हैं। उस समय बच्चियाँ भी वहाँ थी। उनकी पत्नी भी थीं। उनका एक बड़ा भोजन-कक्ष था। हम सब एक बड़े कक्ष में बैठे थे। पति महोदय कहने लगे – महाराज, मेरी पत्नी आपकी बेटी के समान है, उसे थोड़ा समझाइए। मैंने पूछा, क्या बात है? उन्होंने कहा – उन्हें किसी मित्र के यहाँ विवाह के निमन्त्रण में जाना था। पत्नी ने कहा कि आप कैसे व्यक्ति हैं? अमुक के घर विवाह में जाना है, तो आप वही अपना पुराना सूट पहनकर जायेंगे? यह ठीक नहीं है। पत्नी ने बहुत सुनाया। तब उन्होंने कहा, महाराज, इनके हठ करने पर एक नया २ हजार रुपए का सूट खरीद कर लाना पड़ा। सूट देखते ही उन्होंने उसे चौथे मंजिल से नीचे सड़क पर फेंक दिया। वे कहती हैं, क्या आपको शर्म नहीं आई, आप २ हजार का सूट पहन कर वहाँ जायेंगे और मेरी नाक कटायेंगे, हमारी कोई प्रतिष्ठा नहीं है क्या? इतना कहकर पैर पटकते हुए नीचे चली गयीं और जोर से डाँटकर ड्राइवर को बुलायीं। दिल्ली के किसी बड़े रेडीमेड कपड़े की दुकान से १० हजार रुपये का एक सूट खरीदकर लायीं। आप तो जानते हैं, मैं विभिन्न प्रकार के सेवाकार्यों में लगा रहता हूँ। मैं यह सूट पहन कर राहत-कार्य में जाऊँ, तो लोग व्यंग्य करेंगे कि १० हजार का सूट पहन कर सेवा करने आये हैं। क्या ये रुपए यहाँ सेवा के लिए नहीं दे सकते थे? **(क्रमश:)**

चित्तशुद्धि के बिना ईश्वर के दर्शन नहीं होते । कामिनी-कांचन में पड़कर मन मलिन हो गया है, उसमें जंग लग गई है । सुई में कीच लग जाने से उसे चुम्बक नहीं खींच सकता, मिट्टी साफ कर देने ही से चुम्बक खींचता है । मन का मैल नेत्रजल से धोया जा सकता है । 'हे ईश्वर अब ऐसा काम न करूँगा', यह कहकर यदि कोई अनुताप करता हुआ रोए, तो मैल धुल जाता है । तब ईश्वररूपी चुम्बक मनरूपी सुई को खींच लेता है । तब समाधि होती है, ईश्वर के दर्शन होते हैं ।

परन्तु चाहे कितना भी प्रयत्न करो, बिना उनकी कृपा के कुछ नहीं होता । उनकी कृपा बिना उनके दर्शन नहीं मिलते । और कृपा भी क्या सहज ही होती है? अहंकार का सम्पूर्ण त्याग कर देना चाहिए । मैं कर्ता हूँ, इस ज्ञान के रहते ईश्वर-दर्शन नहीं होते ।

– श्रीरामकृष्ण परमहंस

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (८)

स्वामी भास्करानन्द

(रामकृष्ण संघ के महान संन्यासियों के जीवन की प्रेरणाप्रद प्रसंगों का सरल, सरस और सारगर्भित प्रस्तुति स्वामी भास्करानन्द जी महाराज, मिनिस्टर-इन-चार्ज, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'Life in Indian Monastries' में किया है। 'विवेक ज्योति' के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद रामकृष्ण मठ, नागपुर के ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य ने किया है। – सं.)

ईश्वर की इच्छा पर निर्भरता का उदाहरण

स्वामी विशुद्धानन्द

स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज (१८८३-१९६२) के बारे में यह दृष्टान्त है। तब वे रामकृष्ण संघ के उपाध्यक्ष थे और हमारे शिलाँग आश्रम में दीक्षा देने के लिए आये हुये थे। ऊँची पहाड़ी पर स्थित होने के कारण शिलाँग का मौसम वर्षभर ठण्डा रहता था। महाराज की उम्र सत्तर वर्ष से कुछ अधिक थी और उन्हें ठण्ड अधिक लगती थी। परितोष महाराज उनके सचिव तथा सेवक थे।
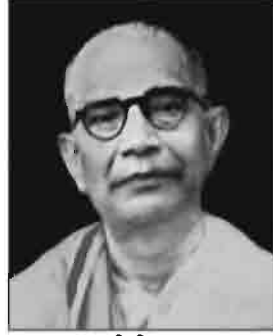
स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज शिलाँग में रहते समय प्रतिदिन गरम पानी से स्नान किया करते थे। वे जिस स्नानागार का उपयोग करते थे, वह पुराने समय का था और उसमें गरम पानी का नल नहीं था। महाराज के स्नान के लिए रसोई-घर से पानी गरम करके उनके स्नानागार में रख दिया जाता था। परितोष महाराज रसोई-घर से एक बालटी उबला हुआ पानी स्नान-घर में रखते थे। वे इसके साथ ही एक बालटी ठण्डा पानी और एक बालटी कुनकुना पानी भी पास में रख देते थे। क्योंकि महाराज अपनी आवश्यकतानुसार कुनकुने पानी में गरम पानी मिलाकर अधिक गरम कर सकें या कुनकुने पानी में ठंडा पानी मिलाकर अधिक ठंडा कर सकें।

महाराज का हाल ही में मोतियाबिन्द का ऑपरेशन (Cataract Surgery) हुआ था। ऑपरेशन के बाद उनको पहनने के लिए एक विशेष प्रकार का चश्मा दिया गया था, जिसे पहने बिना वे अच्छी तरह नही देख पाते थे। स्नान करने के पूर्व उनको चश्मा निकालना पड़ता था।

एक दिन वे स्नान करने के लिए गए। स्नान-घर में मन्द प्रकाश के कारण गरम पानी को कुनकुना पानी समझकर उन्होंने एक मग पानी अपने शरीर पर डाल दिया। तुरन्त ही उनके शरीर का चमड़ा जल गया। वे चिल्ला उठे, "ओह! मेरा शरीर जल गया।" कुछ क्षण बाद ही उन्होंने कहा, "नहीं, ठीक है। यह जगदम्बा की इच्छा है।"

उनके सेवक परितोष महाराज स्नान-घर के बाहर खड़े थे। उन्होंने महाराज की आवाज सुनी। उन्होंने अविलम्ब डॉक्टर को सूचित किया तथा आवश्यकतानुसार महाराज की चिकित्सा की गयी। उस दिन सुबह महाराज भक्तों को दीक्षा देनेवाले थे, जिसे एक दिन आगे बढ़ाना पड़ा।

मृत्यु-भय को जीतने वाले अज्ञात वीर-संन्यासी

श्रीमाँ सारदा देवी कहती थीं, "गरिमामयी मृत्यु कैसे हो, यह सीखना चाहिए।" मृत्यु का भय मनुष्य की जन्मजात प्रवृत्ति है। यद्यपि अधिकांश लोग मृत्यु से डरते हैं, तथापि मृत्यु के समय कुछ असाधारण व्यक्तियों में महान साहस प्रकट होता है। रामकृष्ण संघ के मेरे ४६ वर्षों में अभी तक मैंने एक भी ऐसा संन्यासी नहीं देखा, जो मृत्यु से भयभीत हुआ हो। मैंने बहुत से युवा एवं वृद्ध संन्यासियों को शरीर-त्याग करते हुए देखा है।

ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज (१८७६-१९६३) नामक एक साधु थे। वे स्वामी विवेकानन्द के शिष्य थे। वे आजीवन नैष्ठिक ब्रह्मचारी रहे। जब मैं उनसे प्रथम बार मिला, तब उनकी उम्र लगभग ८० वर्ष से अधिक थी। स्वामी विवेकानन्द के एकमात्र जीवित शिष्य होने के कारण हमारे संघ के सभी संन्यासी एवं भक्तगण उनका बहुत सम्मान करते थे।

ज्ञान महाराज कुछ समय से वृद्धावस्था के रोगों से कष्ट भोग रहे थे। लेकिन संन्यासीगण कहते थे कि वे अपने गुरु स्वामी विवेकानन्द जी की जन्मशताब्दी-महोत्सव देखे बिना शरीर का त्याग नहीं करेंगे। वास्तव में ऐसा ही हुआ ! जनवरी, १९६३ ई. में स्वामी विवेकानन्द के जन्मशताब्दी-महोत्सव के पश्चात् महाराज का स्वास्थ्य अचानक अधिक खराब हो गया। एक दिन हमने सुना कि उनका स्वास्थ्य इतना अधिक खराब हो गया है कि किसी भी समय उनकी मृत्यु हो सकती है। यह सूचना मिलने के बाद बहुत से संन्यासीवृन्द उनके कमरे में एकत्र हो गये। उन लोगों को देखकर ब्रह्मचारी ज्ञान महाराज ने विनोद करते हुए कहा – "देखो, कोई मर रहा है और सब लोग तमाशा देखने आये हैं।"

इसके कुछ ही समय बाद उन्होंने शरीर-त्याग कर दिया।

अब स्वामी सन्तोषानन्द जी महाराज के बारे में एक दृष्टान्त बताता हूँ। वे श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य थे। जब मैं उनसे पहली बार मिला, तब उनकी उम्र लगभग सत्तर वर्ष की रही होगी। उनका व्यक्तित्व बहुत गौरवशाली था तथा उनके मुख-मण्डल से शान्ति प्रस्फुटित होती थी। उन्होंने अपने जीवन का अधिकांश समय रामकृष्ण मिशन स्टूडेन्ट्स होम, कोलकाता में व्यतीत किया था। यहाँ पर एक अभियान्त्रिकी विद्यालय है और महाविद्यालयीन छात्रों के रहने के लिए एक बड़ा छात्रावास है, जहाँ पर बहुत से गरीब छात्र नि:शुल्क रहते हैं। महाराज उस समय इस शैक्षणिक केन्द्र के प्रभारी थे।

महाराज का वृद्धावस्था में अनेक बार शल्योपचार हुआ था। फिर भी वे बहुत सक्रिय एवं सजग थे। एक दिन उनको हार्ट-अटैक आया। उन्होंने आश्रम के साधुओं को बुलाकर कहा - ''शायद मेरा शरीर आज चला जायेगा। इसलिये विद्यार्थियों को पहले ही रात का भोजन करा दो। नहीं तो मेरी मृत्यु से उनलोगों को भोजन करने में परेशानी होगी।''

अविलम्ब महाराज के आदेश का पालन किया गया। चिकित्सक महाराज के बिस्तर के बगल में खड़े हो गये। चिकित्सक तथा वहाँ उपस्थित अन्य व्यक्तियों से महाराज ने कहा, ''बड़ी अद्भुत बात है ! मृत्यु की पीड़ा के बारे में मैंने सुना था, लेकिन उस विषय में जानता नहीं था। अभी मैं उसका प्रत्यक्ष अनुभव कर रहा हूँ।''

वे इसे ऐसे बता रहे थे, जैसे वे एक निष्पक्ष द्रष्टा हों, जो अपने शरीर में होने वाले परिवर्तन को चाव से देख रहे हों। उन्होंने भगवान का नाम लेते हुए शरीर त्याग कर दिया।

स्वामी पुरुषात्मानन्द (१८९५-१९६२) जो प्रबुद्ध महाराज के नाम से जाने जाते थे, उनके बारे में एक रोचक घटना है। वे श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य तथा सिलचर आश्रम के सचिव थे। जब उनकी आयु लगभग पैंसठ वर्ष से अधिक थी, तब उन्हें मालूम हुआ कि उन्हें फेफड़े का कैंसर तथा Aneaurysm of the Aorta का रोग है। उन्हें चिकित्सा हेतु कोलकाता के प्रेसिडेन्सी जेनरल हॉस्पीटल में भर्ती किया गया। उनको सामान्य वार्ड में अन्य रोगियों के साथ रखा गया था।

कुछ महीने अस्पताल में रहने के बाद एक दिन सन्ध्या के समय स्वामी पुरुषात्मानन्द जी महाराज अचानक अपने बिस्तर पर उठकर बैठ गये और भगवान श्रीरामकृष्ण देव का नाम उच्चारण करने लगे। कुछ समय बाद उन्होंने (माँ सारदा को सम्बोधित करते हुए) कहा, '' माँ ! तुम आयी हो। थोड़ा ठहरो, मैं आ रहा हूँ।'' उन्होंने समीप के रोगियों से कहा, ''भाईयो, क्या तुम लोग जगे हुए हो? मेरा समय समाप्त हो गया। मैं जा रहा हूँ।'' तत्पश्चात् वे शान्ति से अपने बिस्तर पर पुन: चिरनिद्रा में सो गये।

स्वामी आद्यानन्द जी महाराज की एक घटना है। तब वे लाहौर आश्रम के अध्यक्ष थे। भारत विभाजन के बाद लाहौर पाकिस्तान में चला गया। पाकिस्तान में आश्रम चलाना असम्भव हो गया था। अत: महाराज वहाँ से पुन: भारत आ गये और चण्डीगढ़ में एक नया आश्रम शुरू किया।

आद्यानन्द जी महाराज अपने विनोदी स्वभाव के लिए प्रसिद्ध थे। मजाक करना उनकी आदत थी। प्रतिदिन रात्रि भोजन के बाद साधुवृन्द समूह में किसी धार्मिक पुस्तक का पाठ करते हैं। एक दिन रात्रि-पाठ के पश्चात् स्वामी आद्यानन्द जी महाराज ने हँसते हुए उपस्थित साधुओं से कहा ''आज रात को मैं शरीर को छोड़ दूँगा।'' उस समय वे पूर्ण स्वस्थ थे। अत: संन्यासियों ने सोचा कि हमेशा की तरह वे मजाक कर रहे हैं। लेकिन सुबह उनलोगों ने देखा कि महाराज की निद्रा में स्वाभाविक मृत्यु हो चुकी है। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३७४ का शेष भाग

अपूर्व त्याग ! वे यदि न होते तो आज महाराणा प्रताप जीवित न बच पाते।

घायल स्वामिभक्त चेतक अपने घायल स्वामी को लेकर वहाँ से जंगल भाग चला। चेतक बुरी तरह से घायल हो चुका था। उसके लिए चलना असम्भव-सा हो गया था। किन्तु वह दौड़ता गया और अपने स्वामी को सुरक्षित स्थान पर पहुँचाकर उसने अन्तिम साँसें ली। महाराणा ने चेतक को अपनी गोद में लिया और उनके नेत्रों से झर-झर आँसू निकल पड़े।

इसके बाद महाराणा प्रताप को स्वतन्त्रता प्राप्त करने के लिए अनेक वर्षों तक संघर्ष करना पड़ा, किन्तु वे सफल हुए। ○○○

भारत की ऋषि परम्परा (८)

स्वामी सत्यमयानन्द

(भारत वर्ष के प्राचीन ऋषियों का सरल, सरस और सारगर्भित विवरण स्वामी सत्यमयानन्द जी महाराज, सचिव रामकृष्ण मिशन, कानपुर ने अपनी पुस्तक 'Ancient Sages' में किया है। विवेक ज्योति के पाठकों हेतु इसका हिन्दी अनुवाद दिया जा रहा है। – सं.)

विश्वामित्र

जब किसी हिन्दू बालक का यज्ञोपवीत संस्कार होता है, तब वह अपने धर्म और पूर्वजों की प्राचीन विचारधारा को जानने का प्रथम सोपान पार करता है। उसका दुबारा जन्म होता है, इसलिए उसे द्विज कहा जाता है। उसकी महान और शक्तिशाली सावित्री मन्त्र में दीक्षा होती है, जिसे गायत्री मन्त्र भी कहा जाता है। हजारों वर्षों से चली आ रही यह वैदिक मन्त्र की परम्परा आज भी वैसे ही है। यही बीज अन्तत: एक विशाल आध्यात्मिक वृक्ष में परिवर्तित होता है।

गायत्री मन्त्र की पावनी और विघ्न-निवारण शक्ति का अनुभव हमारी धार्मिक परम्परा के अनेक श्रद्धालुओं ने किया है। इस मन्त्र के प्रथम द्रष्टा ब्रह्मर्षि विश्वामित्र थे। वे पहले राजा थे, बाद में राजर्षि हुए और अन्तत: ऋषियों में श्रेष्ठ, ब्रह्मर्षि के रूप में विभूषित हुए। हिन्दू धर्म में अनेक ऋषि हुए हैं। उनमें कुछ ऋषि अपनी आध्यात्मिक उपलब्धियों के कारण सचमुच महानतम हैं। लगभग सभी पुराणों में ब्रह्मर्षि विश्वामित्र के बारे में यत्किञ्चित वर्णन प्राप्त होता है। उनका शौर्य ऋषि वशिष्ठ के समान था।

हिन्दुओं के प्राचीनतम और मुख्यतम ग्रन्थ ऋग्वेद में ऋषि विश्वामित्र का वर्णन आता है। उनका और उनके शिष्यों का वर्णन ऋग्वेद के पञ्चम मण्डल के द्रष्टा के रूप में प्राप्त होता है। ऐसा कहा जाता है कि जब कुछ ऋषियों ने विश्वामित्र का मौनव्रत भंग किया, तब उनके पवित्र मन में ये दिव्य मन्त्र स्वर्णाक्षरों में प्रकट हुए। उन्होंने ऋषियों की सभा में इन मन्त्रों का पाठ किया।

पुराण ग्रन्थों में वेदों के पात्र और घटनाओं को सुन्दर कथा और रूपक के माध्यम से प्रस्तुत किया गया है। रामायण में ऋषि विश्वामित्र का वर्णन कुश के वंशज कौशिक के रूप में भी प्राप्त होता है। उनके पिता का नाम गाधि था। विश्वामित्र की बहन का विवाह महर्षि ऋचीक से होने के बाद उनके पिता ने उन्हें कान्यकुब्ज का राजा घोषित किया और वे स्वयं एकान्तवास और तपस्या का जीवन जीने चले गए। उस समय प्रत्येक द्विज का यही कर्तव्य था।

राजा के रूप में विश्वामित्र बहुत सफल हुए। वे विद्वान थे और सभासद उनका आदर करते थे। उनके जीवन में परिवर्तन की घड़ी तब आई, जब उन्हें ऋषि वशिष्ठ के आध्यात्मिक बल के सामने पराजित होना पड़ा। एक बार जब वे अपने पुत्रों और सेना सहित जंगल में आखेट के लिए गए, तब ऋषि वशिष्ठ ने उन्हें भाँति-भाँति के व्यंजनों से सन्तुष्ट किया। विश्वामित्र को बहुत आश्चर्य हुआ कि वन में रहने वाला तापस किस प्रकार अनेक खाद्य-व्यंजनादि की इतनी शीघ्र व्यवस्था कर सकता है? उन्हें तब ज्ञात हुआ कि यह सब ऋषि वशिष्ठ की दैवी गाय कामधेनु का प्रभाव है। वे कामधेनु को प्राप्त करना चाहते थे। कामधेनु की इच्छा न होने पर भी वे उन्हें खींचकर ले जाने लगे। ऋषि वशिष्ठ और कामधेनु इससे बहुत क्रोधित हुए और उन्होंने विश्वामित्र से युद्ध किया। युद्ध में विश्वामित्र के पुत्र और सैनिक उनके सामने टिक न सके और उनकी पराजय हुई। दुख और क्रोध के आवेश में विश्वामित्र ने आक्रामक होकर युद्ध किया, किन्तु उन्हें अनुभव हुआ कि ब्रह्मबल – आध्यात्मिक बल के सामने क्षात्रबल – शारीरिक बल तुच्छ है। उन्होंने वहीं निश्चय किया कि वे ब्रह्मबल को प्राप्त करके ही रहेंगे।

विश्वामित्र अपने राज्य लौटे। अपना राज-पाट स्वजनों को देकर वे घोर तपस्या के लिए चले गए। उनके जीवन का यही वह समय है, जिसकी अत्यधिक स्तुति की गई है। उनकी प्रचण्ड एकाग्रता, ध्यान में तन्मयता और सभी शारीरिक असुविधाओं के प्रति तितिक्षा ने मनुष्यों को ही

नहीं अपितु देवताओं को भी भयभीत कर दिया। जैसे-जैसे उनका तपोबल बढ़ता जा रहा था, देवता भी उनकी तपस्या भंग करने का निरन्तर प्रयास कर रहे थे।

रम्भा नामक अप्सरा देवराज इन्द्र के आदेश पर विश्वामित्र की तपस्या भंग करने पहुँची। स्वयं इन्द्र ने विश्वामित्र के आश्रम के चतुर्दिक वातावरण को उत्तेजित कर दिया। रम्भा ने विश्वामित्र को मोहित करने के लिए नृत्य आरम्भ किया। विश्वामित्र ने आँखें खोलीं और तुरन्त उसका आशय समझ गए। उन्होंने रम्भा को शाप देकर पाषाण बना दिया। इन्द्र ने व्यग्र होकर मेनका नामक दूसरी अपसरा को नियुक्त किया, जो रम्भा से भी अधिक सुन्दर थी। विश्वामित्र को मोहित करने के लिए उन्होंने मेनका को सभी चौंसठ कलाओं का उपयोग करने को कहा। मेनका ने विश्वामित्र को लुभाने के लिए अनेक प्रकार से अनेक प्रयत्न किए। अन्तत: उसे विश्वामित्र की तपस्या भंग करने में सफलता मिली और वह गर्भवती हो गई। उसे एक कन्या हुई, जिसका उसने परित्याग कर दिया। यही कन्या परवर्तीकाल में शकुंतला नाम से प्रसिद्ध हुई।

विश्वामित्र आवेश के साथ पुन: घोर तपस्या में लग गए और प्रलोभन के विषय में अधिक सावधान रहने लगे। धन के देवता कुबेर को उनसे ईर्ष्या हुई। उन्होंने अपनी विद्युतप्रभा नामक दासी को विश्वामित्र को लुभाने के लिए भेजा। यह उनकी दुर्भाग्यपूर्ण भूल थी। विश्वामित्र ने विद्युतप्रभा की पूरी तरह से उपेक्षा की। इस तरह अपमानित होकर विद्युतप्रभा ने भयानक रूप धारण किया। विश्वामित्र ने उसे शाप देकर भगा दिया। अब कोई भी व्यवधान न रहने से वे शीघ्र पूर्णत्व को प्राप्त हुए।

ऋषि विश्वामित्र ने एकबार सर्वजनहिताय एक वैदिक यज्ञ का अनुष्ठान किया। आसुरी शक्तियों ने उनके अनुष्ठान में घोर विघ्न उत्पन्न किए। विश्वामित्र उनका नाश करने को उद्यत हुए, किन्तु उन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि से देख लिया कि इन असुरों का नाश विष्णु के अवतार, अयोध्या के राजकुमार श्रीराम के द्वारा पूर्व-निर्दिष्ट है। वे अयोध्या गए और राजा दशरथ से राम को अपने साथ ले जाने का अनुनय किया। राजा दशरथ राम को भेजना नहीं चाहते थे। अयोध्या के राज-पुरोहित ऋषि वशिष्ठ की मन्त्रणा से दशरथ सहमत हो गए और श्रीराम अपने अनुज लक्ष्मण सहित विश्वामित्र के साथ गए।

यह यात्रा तरुण राजकुमारों के लिए अत्यन्त शिक्षाप्रद थी। ऋषि विश्वामित्र ने उन्हें उस क्षेत्र की प्रचलित परम्पराओं से अवगत कराया और अनेक आश्रमों में ले गए, जहाँ ऋषि-मुनि रहते थे। ऋषियों ने उन्हें ज्ञानपूर्ण उपदेश दिए और आशीर्वाद प्रदान किया। ऋषि विश्वामित्र ने उन्हें भूख और प्यास न लगे, ऐसी बला और अतिबला नामक विद्याएँ प्रदान कीं। उन्होंने राजकुमारों को मन्त्रप्रेरित अस्त्र-शस्त्र की शिक्षा देकर उसमें निपुण बनाया। यज्ञशाला में पहुँचकर राम और लक्ष्मण ने सफलतापूर्वक यज्ञ-विध्वंसकारी असुर-समूह का नाश किया। ऋषि विश्वामित्र का यज्ञ निर्विघ्न समाप्त हुआ। इसके बाद वे उन्हें राजा जनक के राज्य मिथिला ले गए, जहाँ श्रीराम ने जनक-नन्दिनी सीता को जयमाला पहनाई और उनका विवाह हुआ।

एकबार बारह वर्ष तक घोर अकाल पड़ा। विश्वामित्र को भी बहुत कष्ट झेलने पड़े। क्षुधा-पीड़ा से दुर्बल होकर वे एक चाण्डाल के घर भिक्षा माँगने के लिए गए। वहाँ से उन्हें कुछ भी भिक्षा न मिली। किन्तु विश्वामित्र ने देख लिया था कि उसके घर में कुछ माँस का टुकड़ा है। वे रात्रि होने की प्रतीक्षा करने लगे। चोरी-छुपे वे उस चाण्डाल के घर में घुसे और सड़ा हुआ माँस उठाया। चाण्डाल उस समय जगा हुआ था। उसने विश्वामित्र को देख लिया और इस अनुचित कृत्य का कारण पूछा। विश्वामित्र ने कहा कि उसने क्षुधा से पीड़ित होकर यह चौर्य कार्य किया है। चाण्डाल की आँखें डबडबा गईं, किन्तु उसे प्रसन्नता हुई कि विश्वामित्र अब अपनी क्षुधा को शान्त कर सकते हैं।

पौराणिक साहित्य में ब्राह्मण और क्षत्रिय के बीच प्रभुत्व पाने की होड़ को लेकर उनके बीच किञ्चित् विरोध दिखाया गया है। इसके लिए ऋषि वशिष्ठ को ब्राह्मण और ऋषि विश्वामित्र को क्षत्रिय के प्रतिनिधि के रूप में दिखाया गया है। वे एक-दूसरे के प्रति प्रत्यक्ष अथवा किसी अन्य व्यक्ति को दाँव पर रख अपना पराक्रम प्रकट करते हैं। सूर्यवंश के राजा सत्यव्रत, जो अपने तीन घोर पापों के कारण त्रिशंकु कहलाए, वे और उनके पुत्र हरिश्चन्द्र के कारण विश्वामित्र और वशिष्ठ के बीच विवाद उत्पन्न हुआ था।

प्राचीन भारतीय सभ्यता की आचारसंहिता वेदों और स्मृतियों पर आधारित थी। ऋषिगण उसे अपने जीवन में आचरित कर जनमानस में इसका प्रचार-प्रसार करते थे। ऋषि विश्वामित्र अपने प्रखर व्यक्तित्व के बल पर बड़ी सुन्दरता से इस कार्य के वहन में लग गए। धार्मिक सिद्धान्तों की

शेष भाग पृष्ठ ३९३ पर

मैंने हिन्दू धर्म क्यों अपनाया?

भगिनी निवेदिता

(भगिनी निवेदिता की १५० वीं जन्म-जयन्ती के उपलक्ष्य में उनके जीवन और सन्देश से सम्बन्धित यह लेखमाला 'विवेक ज्योति' के पाठकों के लाभार्थ आरम्भ की गई है। – सं.)

मेरा जन्म एक अंग्रेज जाति की कन्या के रूप में हुआ। अठारह वर्ष तक मेरा शिक्षण-प्रशिक्षण अन्य अंग्रेज कन्याओं की तरह हुआ। ईसाई धार्मिक सिद्धान्त प्रारम्भिक अवस्था में ही मुझे आत्मसात् कराए गए थे। बचपन से ही मैं सभी धर्मों के उपदेशों का समादर करती थी और बाल ईसा के स्वेच्छापूर्ण आत्म-त्याग के कारण उनकी निष्ठापूर्वक पूजा करती थी और उन्हें सम्पूर्ण हृदय से प्रेम करती थी, किन्तु मुझे ऐसा लगता था कि मानवता की मुक्ति के लिए उन्होंने सूली पर चढ़कर जो आत्म-बलिदान दिया था, उसके लिए मैं उनकी यथेष्ट पूजा न कर सकी। किन्तु अठारह वर्षों के बाद मेरे मन में ईसाई सिद्धान्तों की सत्यता के प्रति संशय उत्पन्न होने लगे। उनमें से अनेक सिद्धान्त मुझे मिथ्या और सत्य से असंगत प्रतीत होने लगे। ये संशय धीरे-धीरे प्रबलतर होते गए और ईसाई धर्म के प्रति मेरी आस्था भी क्रमशः लड़खड़ाने लगी। लगभग सात वर्षों तक मेरा मन इस विचलित अवस्था में था और मैं बहुत दुखी थी, किन्तु इसके साथ ही सत्य जानने के लिए बहुत अत्यधिक व्याकुल थी। मैंने गिरजाघर में जाना बन्द कर दिया। किन्तु अपनी आत्मा को शान्त करने की उत्कण्ठा कभी-कभी मुझे गिरजाघर में शान्ति प्राप्त करने के लिए प्रार्थना में तल्लीन हो जाने को बाध्य कर देती। अब तक मैं यही करती आ रही थी और मेरे आसपास के लोग भी वही कर रहे थे। किन्तु हाय ! सत्य जानने को उत्सुक मेरी अशान्त आत्मा को शान्ति और विश्राम नहीं मिल पा रहा था।

सात वर्षों के इस अस्थिर समय में मुझे लगा कि प्राकृतिक विज्ञान के अध्ययन द्वारा मैं निश्चय ही उस सत्य को प्राप्त कर सकूँगी, जिसकी मुझे खोज है। अत: निष्ठापूर्वक मैं जगत-उत्पत्ति और उससे सम्बन्धित वस्तुओं के अध्ययन में लग गई। मैंने पाया कि प्रकृति के नियमों में कम-से-कम संगति तो है, किन्तु इस अध्ययन ने ईसाई धर्म के सिद्धान्तों को मेरे लिए और अधिक असंगत जैसा बना दिया। इसी समय मुझे भगवान बुद्ध का जीवन-चरित प्राप्त हुआ। ओह ! यहाँ भी मैंने पाया कि ईसा के कई शताब्दियों पहले एक बालक था, किन्तु उसका त्याग अन्य लोगों के आत्म-त्याग की तुलना में कम न था। इस बालक गौतम ने मेरे मन पर प्रबल अधिकार जमा लिया और तीन वर्षों तक मैं बौद्ध धर्म के अध्ययन में निमग्न हो गई। मुझे दृढ़ विश्वास होता गया कि सचमुच आत्मा की मुक्ति के विषय में बुद्ध के उपदेश ईसाई धर्म के उपदेशों की तुलना में अधिक सत्यपरक हैं।

अब मेरी आस्था में एक संक्रान्ति काल आया। आपके वाइसराय लॉ-र्ड रिपन के चचेरे भाई ने मुझे चाय की दावत दी, जिसमें भारत से आए एक महान संन्यासी से मिलने के लिए निमन्त्रण था। उनके बारे में उन्होंने कहा था कि कदाचित् वे मेरे आत्म-अनुसन्धान के बारे में सहायता कर सकें। वे संन्यासी और कोई नहीं, स्वामी विवेकानन्द थे। परवर्तीकाल में वे मेरे गुरु हुए, जिनके उपदेशों ने मेरी संशयात्मा को शान्ति दी, जिसके लिए मैं बहुत समय से व्याकुल थी। किन्तु केवल एक या दो साक्षात्कारों में मेरी शंकाओं का समाधान नहीं हुआ। ओह ! मेरी उनसे अनेक बार उत्तेजित चर्चाएँ हुईं और उनके उपदेशों पर मैंने एक साल से अधिक विचार किया। तदनन्तर उन्होंने मुझे भारत आने के लिए कहा। वहाँ के योगी-महात्माओं को देखने और उस विद्या की जन्मभूमि में अध्ययन करने के लिए कहा। अन्ततः मुझे उस धर्म की प्राप्ति हुई, जिसका आलम्बन लेकर मैं आत्मोन्नति द्वारा मुक्ति को प्राप्त कर आत्मानन्द में लीन हो सकूँ। मैंने आपको बताया कि मैंने क्यों और कैसे आप लोगों का धर्म अपनाया। यदि आप अधिक सुनना चाहें, तो मैं सानन्द सुना सकती हूँ।

मैं भारत से प्रेम करती हूँ, क्योंकि यह धर्मों में श्रेष्ठ धर्म की जन्म-भूमि है, जहाँ महानतम हिमालय हैं, जहाँ भव्यतम पर्वत स्थित हैं। यह देश है, जहाँ के घर साधारण हैं, जहाँ पारिवारिक खुशी अधिकतम देखने को मिलती है,

जहाँ की नारियाँ निस्स्वार्थता, विनम्रता, उदारता से अपने स्वजनों की भोर से लेकर रात्रि तक सेवा करती हैं, जहाँ माता और दादी-नानी अपने सुख की परवाह किए बिना अपने स्वजनों की सुविधाओं का ध्यान रखती हैं और उसमें योगदान करती हैं तथा निस्स्वार्थता में नारीत्व को सर्वोच्च गौरव प्राप्त कराती हैं।

मेरी बहनो ! मैं तुम लोगों से बहुत प्रेम करती हूँ, क्योंकि आप इस भारत की मनोहर भूमि की पुत्री हो। मैं आप सबसे निवेदन करती हूँ कि आप पाश्चात्य साहित्य के बजाय अपने महान भारतीय साहित्य का अध्ययन करें। आपका साहित्य आपको उन्नत करेगा। इसे पकड़कर रखिए। आप अपने पारिवारिक जीवन के सादगी और संयम को सुरक्षित रखिए। इसकी पवित्रता जो प्राचीन समय में थी और अभी भी आपके सादगीपूर्ण घरों में विद्यमान है, उसको कायम रखिए।

पाश्चात्य संस्कृति के आधुनिक रहन-सहन और अपव्यय तथा उसके आधुनिक अंग्रेजी शिक्षण से अपनी आदरपूर्ण विनम्रता, प्रेमपूर्वक पारिवारिक बन्धन जिसमें वयोवृद्ध का अपने कनिष्ठ स्वजनों के प्रति ध्यान, उन पर उनकी निर्भरता और इसके बदले में अल्पवयस्कों का बुजुर्गों के प्रति सन्तानोचित कर्तव्यपूर्ण सम्मान – इनको दूषित न होने दें। मैं यह निवेदन अपनी हिन्दू बहनों से ही नहीं, अपितु अपनी मुस्लिम और अन्य बहनों से भी करती हूँ। आप सभी मेरी बहनें हैं, क्योंकि आप सभी उस देश की बेटियाँ हैं, जिसको मैंने अपनाया है और जहाँ मैं अपने श्रद्धेय गुरु स्वामी विवेकानन्द का कार्य जारी रखने की आशा करती हूँ।○○

(भगिनी निवेदिता द्वारा २ अक्तूबर, १९०२ को मुम्बई के हिन्दू लेडीज सोशल क्लब में भारतीय नारियों को दिया गया व्याख्यान।)

पृष्ठ ३९० का शेष भाग

व्याख्या करना, कर्तव्यों की गूढ़ बातें बताना, उत्कोचग्रहण (रिश्वतखोरी) से उत्पन्न विपत्ति को दिखाना आदि विषयों पर ऋषि विश्वामित्र प्रकाश देते हैं। महाभारत युद्ध के समय भीषण नरसंहार देखकर वे कुरुक्षेत्र की युद्धभूमि में गए थे। वहाँ उन्होंने सेनानायकों विशेषकर द्रोणाचार्य को युद्ध से विमुख होने की विनती की थी।

ऋषि विश्वामित्र और ऋषि वशिष्ठ में मतभेद होने के बावजूद भी वे एक-दूसरे की महानता को मानते थे। वशिष्ठ स्वयं ब्रह्मर्षि थे, उन्होंने विश्वामित्र को भी इसी पद से विभूषित किया। ○○○

पुस्तक समीक्षा

अप्रतिम योद्धा सरदार पटेल

लेखक एवं प्रकाशक – डॉ. रमेशचन्द्र यादव 'कृष्ण'

कृष्ण कुटीर, कृष्णपुरी, लाइनपार, मुरादाबाद,
पिन – २४४ ००१ (उत्तर प्रदेश)
मोबाइल – ९४१२६-६४५५८
वेबसाइट – www.shrikrishnasansthan.org
ई-मेल – rameshchandrayadav832@gmail.com
पृष्ठ – २८८, मूल्य - चार सौ रूपये मात्र

भारतीय स्वतन्त्रता और एकता के पुरोधा और प्राण स्वरूप भारत माता के महान सपूत सरदार वल्लभ भाई पटेल की गौरवगाथा से भारत का बच्चा-बच्चा परिचित है। उनके महान क्रान्तिकारी ओजस्वी और पराक्रमी व्यक्तित्व के विविध पक्षों पर विस्तृत चिन्तन कर आयामों 'अप्रतिम योद्धा सरदार पटेल' नामक पुस्तक का प्रणयन डॉ. रमेश चन्द्र यादव 'कृष्ण' जी ने किया है। डॉ. कृष्ण जी एक उच्च कोटि के चिन्तक और लेखक हैं। भारतीय संस्कृति के संरक्षणार्थ और जन-मानस में भारतीय गौरव के प्रचारार्थ कई पुस्तकों का प्रणयन उनके रन्ध्र-रन्ध्र में भारतीय संस्कृति के सौरभ-सुवास को दर्शाता है।

पुस्तक के प्रारम्भ में राजर्षि मनु, चक्रवर्ती सम्राट भरत, भगवान श्रीकृष्ण, गुप्तकालीन बुद्ध मूर्ति, मौर्य सम्राट अशोक आदि के रंगीन चित्र पुस्तक के सौन्दर्य में वृद्धि प्रसंगों को जीवन्त बना देते हैं। सरदार पटेल का जीवन 'सादा जीवन उच्च विचार', तथा तेज-ओज एवं वीरतापूर्ण गाथाओं से परिपूर्ण था। ३० जून १९४५ को बम्बई की एक सार्वजनिक सभा में सरदार पटेल की घोषणा थी – ''अब अँग्रेजों को भारत ही नहीं, अपितु एशिया भी छोड़ना पड़ेगा।'' इससे सिद्ध होता है कि वे भारत ही नहीं, स्वतन्त्रतापिपासू सम्पूर्ण एशियाई देशों के क्रान्तिकारियों और नायकों के प्रेरणास्रोत और अग्रदूत थे। साबरमती के रेतीले तट पर ७५००० नर-नारियों का संबोधन उनकी तत्कालीन लोकप्रियता और संगठनशक्ति का द्योतक है। 'अप्रतिम योद्धा सरदार पटेल' हेतु सामग्री संकलन और उनका यथास्थान समन्वयन पुस्तक के प्रणेता डॉ. रमेश चन्द्र यादव की मेधा और कर्मकुशलता को द्योतित करता है। इस अनुपम कृत्ति हेतु वे धन्यवादार्ह हैं। लेखक की नई पुस्तक की प्रतीक्षा में ...। ○○○

श्रीकृष्ण जन्माष्टमी विशेष

श्रीकृष्ण के लीला-विलास का तात्पर्य

पद्मभूषण आचार्य बलदेव उपाध्याय

'लीला' शब्द के अर्थ का विचार विस्तार से शब्दकल्पद्रुम (चतुर्थ भाग, पृष्ठ २२४) में किया गया है। सामान्यत: लीला का अर्थ है – केलि, विलास तथा शृंगार, भाव-चेष्टा। श्रीमद्भागवतपुराण के प्रथम स्कन्ध (१/१८) में इस शब्द का समुचित संनिवेश उपलब्ध होता है –

अथाख्याहि हरेर्धीमन्नवतारकथाः शुभाः।
लीला विदधतः स्वैरमीश्वरस्यात्ममायया।।

लीला के दो प्रकार होते हैं – प्रकटा और अप्रकटा।

गोकुले मथुरायां च द्वारकायां च शार्ङ्गिणः।
यास्तत्र तथा प्रकटास्तत्र तत्रैव सन्ति ताः।। (भागवतामृतम्)

भगवान श्रीकृष्ण की लीलाएँ अनन्त हैं, किन्तु प्रमुख रूप से उनकी तीन लीलाएँ विशेष प्रसिद्ध हैं। इन तीनों लीलाओं में सर्वथा ऐक्य है। इसका आरम्भ होता है – व्रज लीलासे, तदनन्तर आती हैं मथुरा-लीला और अन्तिम है द्वारका-लीला।

श्रीकृष्ण का गोपियों के साथ लीला-विलास का सम्बन्ध जीवन के आरम्भ से लेकर अन्त तक रहता है। माता के उदराश्रित होने से लेकर आगे बढ़ता चला गया था। उन्होंने उस समय अपने ज्येष्ठ भ्राता को गोकुल में नन्द के घर में रोहिणी माता के गर्भ में योगमाया के आश्रय से संन्निविष्ट करा दिया था, जो 'संकर्षण' नाम से विख्यात हुए। शिशु श्रीकृष्ण के प्रभाव से देवकी तथा वसुदेव को कारागार में भी उनकी अद्भुत लीला दृष्टिगोचर हुई थी। रक्षक लोगों को निद्रा आ गयी थी तथा उनके बन्धन मुक्त हो गये थे। कृष्ण जब अपने जीवन के आरम्भ में गोकुल आये, तब यशोदा को कन्या की प्राप्ति हुई थी। यह भी कृष्ण के जीवन के आरम्भिक काल का लीला-विलास था।

श्रीकृष्ण के आरम्भिक जीवन में गोपियों के साथ नाना प्रकार की लीलाओं का विन्यास दृष्टिगोचर होता है। कंस द्वारा कृष्ण को मारने के अनेक उपायों में उनकी लीला का विलास दृष्टिगोचर होता है। कृष्ण की जीवन-लीला को समाप्त करने के लिये कंस ने विविध चेष्टाएँ की थीं, इनमें कृष्ण के जीवन का लीला-विलास प्रचुर मात्रा में देखा जा सकता है। उन्हें मारने के लिये पूतना भेजी गयी थी और बालक कृष्ण ने उसे दूध पीते ही मार डाला। यह भी उनके आरम्भिक जीवन का विलास ही था।

यमुनाजी में कालियनाग की नाना प्रकार की चेष्टाएँ दीखती हैं, जिनके कारण यमुना का जल विष-मिश्रित हो गया था। कृष्ण ने कालियनाग के सिर पर नृत्य कर उसके दोष को दूर करने का प्रयास किया था। यह उनकी नृत्य-लीला का सद्यः विलास था।

गोपियों के चीरहरण के प्रसंग में लीला-विलास सद्यः स्फुरित होता है। इस लीला के द्वारा उन्होंने नग्न-स्नान के दोष को सदा के लिए वज्र से दूर कर दिया था, नदी की पवित्रता की रक्षा की थी और साथ ही उन्होंने यह प्रदर्शित किया था कि भगवान का सान्निध्य प्राप्त करने के लिये मनुष्य को ऊपरी दोषों को हटाना पड़ेगा, तभी उनके साथ उसका सर्वथा मिलन सम्भव होगा।

गोवर्धन-धारण-लीला का महत्त्व सबके सामने कृष्ण ने दिखाया था। व्रज के लोग इन्द्र की पूजा करते थे। कृष्ण ने इसका अनौचित्य सिद्ध किया और इन्द्र के महत्त्व को कम करने की दृष्टि से यह लीला प्रदर्शित की थी। श्रीकृष्ण ने ब्रह्मा का गर्व चूर्ण करने के लिए अपने संकल्प से गो, ग्वाल-बाल तथा अन्य जीवों को छिपा रखा था तथा एक वर्ष के अनन्तर उन सबको उसी रूप में प्रकट किया। किसी को भी इस अन्तरंग लीला की गम्भीरता का, रहस्य का पता नहीं चला। इस प्रकार ब्रह्मा के गर्व को भी कृष्ण ने चूर्ण-विचूर्ण कर दिया।

श्रीकृष्ण की लीला का अनुकरण उनके जीवनकाल में ही होने लगा था। यह लीला का विशेष रूप है। रास के समय गोपियों के गर्व को दूर करने के लिए भगवान श्रीकृष्ण स्वयं अन्तर्हित हो गये, तब गोपियों ने उनके जीवन की समस्त घटनाओं का स्वयं अनुकरण किया था। कृष्ण की जितनी लीलाएँ पहले हो चुकी थीं, उन सबका अनुकरण कर गोपियों ने उन्हें पुनर्जीवित कर दिया था। कोई पूतना बनी थी, तो कोई यमलार्जुन। इसी प्रकार कृष्ण द्वारा सम्पादित लीलाओं को गोपियों ने पूर्णतया अनुकरण के द्वारा दिखलाया था। यह विचित्र घटना है।

इसी प्रसंग में सुदामाजी की छोटी कुटिया हटाकर भगवान ने वहाँ महल खड़ा कर दिया था। गुरु के यहाँ पढ़ने गये, तो उन्होंने सान्दीपनि गुरु के मृत पुत्र को पुन: जीवित करके गुरुदक्षिणा के रूप में उन्हें समर्पित कर दिया था। श्रीकृष्ण के जीवन की ये लीलाएँ सर्वदा स्मरणीय रहेंगी। इनका विस्मरण कोई नहीं कर सकता।

भगवान श्रीकृष्ण राधिका के विषय में स्वयं कहते हैं –

कृष्णं वदन्ति मां लोकास्त्वयैवरहितं यदा।
श्रीकृष्णं च तथा तेऽपि त्वयैव सहितं परम्।।

(ब्रह्मवैवर्त ६/६३)

श्रीकृष्ण का जीवन वृन्दावन में आने पर वहाँ रहने वाली गोपियों के साथ इतना हिल-मिल गया कि उसे पृथक करना नितान्त असम्भव है। गोपियों के साथ होनेवाली प्रेमलीला का वर्णन यथार्थत: कठिन होता है। राधा के साथ की गयी उनकी प्रेमलीला इतनी मधुरिमामयी है कि उसका यथार्थ वर्णन करना कठिन ही नहीं, असम्भव-सा है। दोनों आपस में मिलकर प्रेम के उत्कर्ष को स्वयं चखते हैं तथा दूसरों को भी चखाते हैं। कृष्ण का राधा के लिये जिस लीला-विलास का उत्कर्ष दृष्टिगोचर होता है, वह रागानुगा-भक्ति का चरम उत्कर्ष है। भक्त कवियों ने इस आनन्दमयी दशा की अभिव्यञ्जना अपने काव्यों में बड़ी सरसता के साथ की है। इस प्रेमदशा का सुन्दर चित्रण निम्न पंक्तियों में देखिये –

घर तजों वन तजों नागर-नगर तजों।
बंसीवट-तट तजों काहू पै न लगिहौं ।।
बावरो भयो है लोक, बावरी कहत मोंको ।
बावरी कहैते मैं काहू ना बरजिहों।।
कहै या सुनै या तजों, बाप और मैया तजों ।
दैया तजों मैया पै कन्हैया नाहिं तजिहौं।।

माधुर्य-रसोपासना की कैसी दिव्य भावविभूति है यह !

प्रेम तथा काम का तारतम्य

प्रेम तथा काम में अन्तर होता है। प्रेम में त्याग की भावना प्रबल होती है और काम में स्वार्थ की भावना निहित होती है। नारदजी की दृष्टि में प्रेम की प्रधान पहचान है – **'तत्सुखसुखित्वम्'** – प्रियतम के सुख में अपने को सुखी मानना। राधा का जीवन ही कृष्णमय था। काम दूसरे के द्वारा अपनी तृप्ति चाहता है, परन्तु प्रेम अपने द्वारा प्रेमपात्र की तृप्ति चाहता है। दोनों का तारतम्य चैतन्य-चरितामृत में बड़े सुन्दर शब्दों में अभिव्यक्त किया गया है –

आत्मेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम काम
कृष्णेन्द्रिय प्रीति इच्छा तार नाम प्रेम।
काम अन्धतम प्रेम निर्मल भास्कर
अतएव गोपी गणे नाहि काम गन्ध
कृष्ण सुख हेतु मात्र कृष्णेर सम्बन्ध।।

श्रीकृष्ण का राधा के साथ जो लीला-विलास है, प्रेम-प्राचुर्य है, उसकी गम्भीरता का वर्णन कथमपि सम्भव नहीं। दक्षिण भारत के आलवारों की भक्ति-भावना में राधा-कृष्ण के गम्भीर प्रेमभावना की जो स्थिति है, उसे यथार्थत: समझने में भक्त लोग सर्वथा असमर्थ रहते हैं। आलवारों के जीवन का आदर्श इस पद्य में बड़ी सुन्दरता के साथ अंकित किया गया है –

व्याधस्याचरणं ध्रुवस्य च वयो विद्या गजेन्द्रस्य का
ज्ञातिर्वा विदुरस्य यादवपतेरुग्रस्य किं पौरुषम्।
कुब्जाया: किमु वामरूपमधिकं किं तत् सुदाम्नो धनं
भक्त्या तुष्यति केवलं न च गुणैर्भक्तिप्रियो माधव: ।।

अर्थात् व्याध, ध्रुव, गजेन्द्र, विदुर, कुब्जा और सुदामा में कोई विशेष गुण नहीं था, बल्कि भक्ति के कारण भगवान प्रसन्न हुए।

तात्पर्य यह कि भक्तों में दोषों की सत्ता होने पर भी माधव उनसे केवल गुणों के कारण ही प्रसन्न नहीं होते, प्रत्युत भक्ति के द्वारा प्रसन्न होते हैं। ○○○

(कल्याण के भगवल्लीला अंक, पृष्ठ ९६ से साभार)

सिहस्थ कुम्भ उज्जैन - २०१६

श्रीरामकृष्ण आश्रम, उज्जैन द्वारा सिंहस्थ कुम्भ उज्जैन - २०१६ हेतु एक मास हेतु शिविर का आयोजन किया गया। यह शिविर मेला-परिसर में भूखी माता से लगभग एक-डेढ़ किलोमीटर दूर दत्त अखाड़ा क्षेत्र में अवस्थित था। इस शिविर का उद्घाटन २१ अप्रैल, को १० बजे मुख्य अतिथि रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मठ, बेलूड़ के प्रबन्धक स्वामी गिरीशानन्द जी महाराज के कर-कमलों द्वारा हुआ। इस अवसर पर मायेरबाड़ी उद्बोधन के अध्यक्ष स्वामी विश्वनाथानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित किया। रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और रामकृष्ण मठ, प्रयाग के अध्यक्ष स्वामी सर्वभूतानन्द जी महाराज ने कुम्भ के आध्यात्मिक महत्व पर प्रकाश डाला। शिविर के संचालक स्वामी भास्करानन्द जी महाराज ने आगत समस्त अतिथियों का स्वागत किया और सबके लिये अच्छी व्यवस्था की थी। इस अवसर पर मध्य प्रदेश शासन के मन्त्री श्री माखन सिंह जी भी उपस्थित थे। आश्रम द्वारा प्रकाशित स्वामी ओमानन्द जी के द्वारा सम्पादित 'सिंहस्थ - २०१६' नामक स्मारिका और डॉ. आभा चौरसिया और डॉ. विभा चौरसिया द्वारा गाए गीतों की सी.डी. का विमोचन भी मुख्य अतिथियों के द्वारा किया गया। स्वामी ओमानन्द जी और स्वामी सुहृदानन्द जी ने शान्तिपाठ किया। धन्यवाद ज्ञापन श्री शैलेष जोशी और संचालन श्री गिरीश जोशी जी ने किया। मेला-शिविर में साधुओं, भक्तों के भोजन-आवास आदि की बहुत अच्छी व्यवस्था स्वामी भास्करानन्द जी महाराज ने की थी। बेलूड़ मठ के स्वयंसेवक एवं संन्यासी विभिन्न प्रकार से सेवा दे रहे थे।

२२ अप्रैल को सिंहस्थ कुम्भ का प्रथम शाही स्नान सकुशल सम्पन्न हुआ। कई लाख श्रद्धालुओं ने विशेषकर क्षिप्रा के रामघाट एवं अन्य स्थानों पर स्नान-दर्शन किए। विभिन्न अखाड़ों एवं आश्रमों के पूज्य महामण्डलेश्वरों, सन्तों ने स्नान कर स्वयं को कृतार्थ अनुभव किया। विभिन्न पण्डालों में अनेकों सन्तों-महात्माओं के प्रवचन और महान कलाकारों के सांस्कृतिक कार्यक्रमों से उज्जैन की धरा गूँज रही थी। ज्योतिर्लिंग महाकालेश्वर शिव और शक्तिपीठ माँ हरसिद्धि देवी के लाखों श्रद्धालुओं ने दर्शन किए।

रामकृष्ण मिशन, इन्दौर में रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष और संघगुरु स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने भक्तों को दीक्षा प्रदान की।

रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल में १८ अप्रैल से २४ अप्रैल तक विवेकानन्द विद्यापीठ परिसर में वार्षिक महोत्सव मनाया गया। १८, १९, २० अप्रैल को विख्यात मानसकथाकार स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती (श्री राजेश रामायणीजी) के सायं ६.३० बजे प्रवचन हुए। २४ अप्रैल, २०१६ को सायं ७ बजे धर्म-महासभा हुई, जिसमें वरिष्ठ न्यासी, रामकृष्ण मठ-मिशन बेलूड़ मठ हावड़ा के पूज्य स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, वरिष्ठ संन्यासी स्वामी निखिलात्मानन्द जी महाराज ने सभा को सम्बोधित किया।

रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी, छत्तीसगढ़ में वार्षिकोत्सव मनाया गया

रामकृष्ण सेवा समिति आश्रम, कोनी, बिलासपुर (छत्तीसगढ़) द्वारा संचालित रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ, बिजुरी, अनूपपुर (मध्यप्रदेश) ने ३० अप्रैल, २०१६ को वार्षिकोत्सव आयोजित किया। कार्यक्रम सायं ६ बजे स्कूल परिसर में विवेकानन्द वाटिका स्थित स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति के माल्यार्पण से हुआ। उसके बाद विवेकानन्द सभागार में अभ्यागत अतिथियों – एसइसील के डीप्टी जेनरल मैनेजर श्री एस. पी. दास जी, विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी, रामकृष्ण सेवा समिति के सचिव श्री सतीश कुमार द्विवेदी जी, रामकृष्ण विवेकानन्द विद्यापीठ के निदेशक श्री सुरेश चन्द्राकर जी ने दीपप्रज्वलन कर सांस्कृतिक कार्यक्रम का शुभारम्भ किया। बच्चों ने विभिन्न प्रकार के बहुत से शिक्षाप्रद सास्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किये। श्री एस.पी.दास जी ने राष्ट्रस्तरीय प्रतियोगिता में विजयी छात्रों को भेंट देने की घोषणा की। स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने विश्व के विरासत छात्र-छात्राओं के सर्वांगीण चरित्र-निर्माण में माता-पिता, शिक्षकों से निष्ठापूर्वक कर्तव्य-पालन का निवेदन किया। सतीश कुमार द्विवेदीजी ने स्कूल के विकास में सब प्रकार से सहयोग करने का वचन दिया। सुरेश चन्द्राकर जी ने स्कूल के विकास और सफल कार्यक्रम का श्रेय अपने विद्यालय के समस्त अधिकारियों को दिया। ○○○